लाय कर कहा—अरे तू कौन है अपना बखान कर, जो मारता है गाय और बैल जान कर; क्या अर्जुन को तैने दूर गया जाना, तिससे उसका धर्म नहीं पहिचाना; सुन पाण्डु के कुल में ऐसा किसी को न पावेगा कि जिसके सोंही कोई दीन को सतावेगा। इतना कह राजा ने खड्ग हाथ में लिया, वह देख कर खड़ा हुआ। फिर नरपति ने गाय और बैल को भी निकट बुला के पूछा कि तुम कौन हो मुझे बुझाकर कहो। देवता हो कि ब्राह्मण और किस लिये भागे जाते हो यह निधड़क कहो, मेरे रहते किसी की इतनी सामर्थ्य नहीं जो तुम्हें दुःख दे।

इतनी बात जब सुनी तब तो बैल सिर झुका बोला महाराज! यह पाप रूप काले बरण डरावनी सूरत जो आप के सन्मुख खड़ा है सो कलियुग है; इसी के आने से मैं भागा जाता हूँ। यह गाय-रूप पृथ्वी है सो भी इसी के डर से भाग चली है और मेरा नाम है धर्म, चार पाँव रखता हूँ; तप, सत्य, दया और शौच। सतयुग में मेरे चरण बीस बिस्वे थे, त्रेता में सोलह, द्वापर में बारह, अब कलियुग में चार बिस्वे रहे, इस लिए कलि के बीच में चल नहीं सकता। धरती बोली धर्मावतार! इस कलियुग में मुझ से भी रहा नहीं जाता, क्योंकि शूद्र राजा हो अधिक अधर्म मेरे ऊपर करेंगे तिनका बोझ मैं न सह सकूँगी, इस भय से मैं भी भागती हूँ। यह सुनते ही राजा ने क्रोध कर कलियुग से कहा—मैं तुझे भी मारता हूँ। वह थरथर काँप राजा के चरणों पर गिर गिड़गिड़ा कर कहने लगा—पृथ्वीनाथ! अब तो मैं तुम्हारी शरण आया, मुझे रहने को ठौर बताइए क्योंकि तीन काल और चारों युग जो

ब्रह्मा ने बनाये हैं सो किसी भाँति मेटे न मिटेंगे। इतना वचन सुनते ही राजा परीक्षित ने कलियुग से कहा कि तुम इतने ठौर रहो—जुए, झूठ, मद की हाट, वेश्या के घर, हत्या, चोरी और सुवर्ण में। यह सुन कलि ने तो अपने स्थान को प्रस्थान किया और राजा ने धर्म्म को अपने मन में रख लिया, पृथ्वी अपने रूप में मिल गई। राजा फिर नगर में आये और धर्म्मराज करने लगे।

कितने एक दिन बीते राजा फिर एक समय अखेट को गये और खेलते खेलते प्यासे भये। सिर के मुकुट में तो कलियुग रहता ही था, इसने अपना अवसर पा राजा को अज्ञान किया। राजा प्यास के मारे कहाँ जाते हैं कि जहाँ शमीक ऋषि आसन मारे, नयन मूँदे हरि का ध्यान लगाए, तप कर रहे थे। उन्हें देख परीक्षित मन में कहने लगा कि यह अपने तप के घमण्ड में मुझे देख आँख मूँद रहा है। ऐसी कुमति ठानी, एक मरा साँप वहाँ पड़ा था, सो धनुष से उठा, ऋषि के गले में डाल, अपने घर आया। मुकुट उतारते ही राजा को ज्ञान हुआ तो सोच कर कहने लगा कि कंचन में कलियुग का वास है, यह मेरे सिर पर था, इसी से मेरी ऐसी कुमति हुई जो मरा सर्प ऋषि के गले में डाल दिया; सो मैं अब समझा कि कलियुग ने मुझसे अपना पलटा लिया। इस महा पाप से मैं कैसे छूटूँगा? वरन् धन, जन, स्त्री और राज्य, मेरा क्यों न गया सब आज, न जानूँ किस जन्म में यह अधर्म जायगा जो मैंने ब्राह्मण को सताया है।

राजा परीक्षित तो यहाँ इस अथाह सोच-सागर में डूब रहे थे और जहाँ शमीक ऋषि थे तहाँ कितने एक लड़के खेलते हुए जा

निकले । मरा साँप इनके गले में देख अचम्भे में रहे और घबरा कर आपस में कहने लगे कि भाई कोई इनके पुत्र से जाकर कह दे जो उपवन में कौशिकी नदी के तीर ऋषियों के बालकों में खेलता है । एक सुनते ही दौड़ा वहाँ गया जहाँ शृङ्गी ऋषि छोकरों के साथ खेलता था । कहा बन्धु ! तुम यहाँ क्या खेलते हो, कोई दुष्ट मरा हुआ काला नाग तुम्हारे पिता के कंठ में डाल गया है । सुनते ही शृङ्गी ऋषि के नयन लाल हो गये, दाँत पीस पीस लगा थर थर काँपने और क्रोध कर कहने कि कलियुग में राजा उपजे हैं अभिमानी, धन के मद से अन्धे हो गये हैं दुख दानी; अब मैं उसको दूहूँ शाप, वही मीच पावेगा आप । ऐसे कह शृङ्गी ऋषि ने कौशिकी नदी का जल चुल्लू में ले राजा परीक्षित को शाप दिया कि यही सर्प सातवें दिन तुझे डसेगा ।

इस भाँति राजा को शाप दे, अपने बाप के पास आ, गले से साँप निकाल, कहने लगा हे पिता ! तुम अपनी देह सँभालो, मैंने उसे शाप दिया है जिसने आपके गले में मरा सर्प डाला था । यह वचन सुनते ही ऋषि चैतन्य हो, नयन उघाड़ अपने ज्ञान ध्यान से विचार कर कहा अरे पुत्र ! तूने यह क्या किया क्यों शाप राजा को दिया ? जिसके राज में थे हम सुखी, कोई पशु पक्षी भी न था दुखी । ऐसा धर्मराज था कि जिसमें सिंह गाय एक साथ रहते और आपस में कुछ न कहते । अरे पुत्र ! जिसके देश में हम बसें, क्या हुआ तिनके हँसे । मरा हुआ साँप डाला था, उसे शाप क्यों दिया ? तनक दोष पर ऐसा शाप, तैंने किया बड़ा ही पाप, कुछ विचार मन में नहीं किया गुण छोड औगुण ही लिया ।

तिनमें बड़े पुत्र वसुदेव जिनकी स्त्री के आठवें गर्भ में श्रीकृष्णचन्द्र ने जन्म लिया। जब वसुदेव उपजे थे तब देवताओं ने सुरपुर में आनन्द बाजन बजाए थे। और सूरसेन की पाँचों पुत्रियों में सबसे बड़ी कुन्ती थी जो पाण्डु को ब्याही थी, जिसकी कथा महाभारत में गाई है। और वसुदेवजी पहले तो रोहन नरेश की बेटी रोहिणी को ब्याह लाये। तिसके पीछे सत्रह। जब अठारह पटरानी हुईं तब मथुरा में कंस की बहिन देवकी को ब्याहा। तहाँ आकाशवाणी हुई कि इस लड़की के आठवें गर्भ में कंस का काल उपजेगा। यह सुन कंस ने बहिन-बहनोई को एक घर में मूँद दिया और श्रीकृष्णजी ने वहाँ ही जन्म लिया। इतनी कथा सुनते ही राजा परीक्षित बोले कि महाराज! कैसे जन्म कंस ने लिया किसने उसे महाबल दिया और कौन रीति से कृष्ण उपजे आय, फिर किस विधि से गोकुल पहुँचे जाय यह तुम मुझे कहो समुझाय।

श्रीशुकदेवजी बोले मथुरापुरी का आहुक नाम राजा था, जिसके [illegible] एक का नाम देवक दूसरा उग्रसेन। फिर एक दिन [illegible] उग्रसेन [illegible] [illegible] एक ही रानी जिसका [illegible] और पतिव्रता थी। [illegible] [illegible] [illegible] एक [illegible] [illegible] [illegible] गया [illegible] [illegible] कर गिरत, [illegible] [illegible] [illegible] मास पीछे नाम ११ [illegible] कंस ने जन्म लिया तब राजा उग्रसेन ने प्रसन्न हो

सारे नगर में महुलामुखियों को बुलाय, मङ्गलाचार करवाये और सब अक्षद, पण्डित, ज्योतिषियों को भी अति मान सम्मान से बुलवा भेजा। वे आये, राजा ने बड़ी भावभक्ति से आसन दे दे बैठाये तब ज्योतिषियों ने लग्न साध, मुहूर्त विचार कर कहा पृथ्वीनाथ! यह लड़का कंस नाम तुम्हारे वंश में उपजा जो अति बलवन्त हो राक्षसों को साथ ले राज करेगा और देवता और हरिभक्तों को दुःख दे आप का राज्य ले निदान हरि के हाथ मरेगा।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी मुनि ने राजा परीक्षित से कहा राजा! अब मैं उग्रसेन के भाई देवक की कथा कहता हूँ, कि उसके चार बेटे थे और छः बेटियाँ, सो छओं वसुदेव को ब्याह दीं, सातवीं देवकी हुई जिनके होने से देवताओं को प्रसन्नता भई। और उग्रसेन के भी दशों पुत्रों पर सब से कंस ही बड़ा था। जब से जन्मा तब से यह उपाधि करने लगा कि नगर में जाय और छोटे छोटे लड़कों को पकड़ लावे और पहाड़ की खोह में मूँद मूँद कर मार मार डाले। जो बड़े होवें तिनकी छाती पै चढ़ गला घोंट जी निकाले। इस दुःख से कोई कहीं न निकलने पावे। सब कोई अपने अपने लड़कों को छिपावे। प्रजा कहे दुष्ट यह कंस उग्रसेन का नहीं है वंश, यह कोई महापापी जन्म ले आया है, जिसने सारे नगर को सताया है। यह बात सुन उग्रसेन ने ऐसे दुःख [illegible] इसका कहना इसके जी में कुछ भी न आया तब दुःख [illegible] कहने लगा [illegible] [illegible] क्यों न हुआ

कहत हैं जिन [illegible] [illegible]

और धर्म आता है । जब कंस आठ वर्ष का भया तब मगध देश पर चढ़ गया । वहाँ का राजा जरासन्ध बड़ा योद्धा था, तिससे मिल इसने मल्लयुद्ध किया, तो उसने कंस का बल लख लिया । तब हार मान अपनी दो बेटियाँ ब्याह दीं । पहले मथुरा में आया और उग्रसेन से बैर बढ़ाया । एक दिन कोप कर अपने पिता से बोला कि तुम राम नाम कहना छोड़ दो और महादेव का जप करो । तिसने कहा मेरे तो कर्त्ता दुःखहर्त्ता वेई हैं; जो तिनको ही नहीं भजूँगा तो अधर्मी हो कैसे भवसागर पार हूँगा ? यह सुन कंस ने सुतमाय बाप को पकड़ कर सारा राज्य ले लिया और नगर में यों ढंढोरा फेर दी कि कोई यज्ञ, दान, धर्म, तप और रामनाम कहने न पावे । ऐसा अधर्म बढ़ा कि गौ, ब्राह्मण, हरि के भक्त दुःख पाने लगे और धरती अति बोझों मरने लगी । जब कंस सब राजाओं का राज ले चुका, तब एक दिन अपना दल ले राजा इन्द्र पर चढ़ चला । वहाँ मन्त्री ने कहा महाराज ! इन्द्रासन बिन तप किये नहीं मिलता, आप बल का गर्व न करिए, देखो ने रावण कुम्भकर्ण को कैसा खो दिया कि जिनके कुल में भी न रहा ।

इतनी कथा कह शुकदेवजी राजा परीक्षित से कहने लगे कि राजा ! जब पृथ्वी पर अति अधर्म होने लगा तब पृथ्वी दुख पाय, घबराय गाय का रूप बन डकराती देवलोक में गई, और इन्द्र की सभा में जाय सिर झुकाय उसने अपनी सब पीर कही कि महाराज संसार में असुर अति पाप करने लगे तिनके डर से धर्म तो उठ गया जो मुझे आज्ञा हो तो नरपुर छोड़ रसातल जाऊँ।

और गोपी कहलाईं। जब देवता मथुरापुरी में आ चुके तब क्षीर-समुद्र में हरि विचार करने लगे कि पहले तो लक्ष्मण होवें बलराम, पीछे वासुदेव हो मेरा नाम, भरत, प्रद्युम्न, शत्रुघ्न, अनिरुद्ध और सीता रुक्मिणी का अवतार लें।

कंस भी अलङ्कार समेत वस्त्र पहिराये, रथ लिए पहुँचाने चले। तब आकाशवाणी हुई कि अरे कंस! जिसे तू पहुँचाने चला है तिसका आठवाँ लड़का तेरा काल उपजेगा, उसके हाथ तेरी मृत्यु है।

यह सुनते ही कंस डर कर कांप उठा और क्रोध कर देवकी को झोंटे पकड़ रथ से नीचे खींच लाया। खड्ग हाथ में ले दांत पीस पीस कहने लगा, जिस पेड़ को जड़ ही से उखाड़िए तिसमें फूल फल काहे को लगेगा, अब इसी को मारूँ तो निर्भय राज्य करूँ। यह देख सुन वसुदेव मन में कहने लगे कि इस मूर्ख ने सन्ताप किया, यह पुण्य और पाप नहीं जानता है; जो मैं अब क्रोध करता हूँ तो काज बिगड़ेगा, तिससे इस समय क्षमा करनी ही उचित है।

चौपाई।

जो बैरी खैंचे तलवार। करै साधु ताको मनुहार।
समझ मूढ़ सोई पछताय। जैसे पानी आग बुझाय॥

यह सोच समझ वसुदेव कंस के सन्मुख जा हाथ जोड़ बिनती कर कहने लगा कि सुनो पृथ्वीनाथ! तुम सा बली संसार में कोई नहीं है और सब तुम्हारी छाँह तले बसते हैं। ऐसे शूर हो स्त्री पर शस्त्र करना यह अति अनुचित है, और बहन के मारने से महापाप होता है। तिस पर भी मनुष्य अधर्म तो करे जो जाने कि मैं कभी न मरूँगा। इस संसार की तो यही रीति है कि इधर जन्मा उधर मरा। करोड़ यत्न से पाप पुण्य कर कोई इस देह को पाये, पर यह कभी अपनी न होयगी और धन यौवन राज्य भी न आवेगा काम, इससे मेरा कहा मान लीजे और अबला अधीन

बहन को छोड़ दीजै। इतना सुन यह अपना काल जान घबरा कर और भुँझलाया। तब वसुदेव सोचने लगे कि यह पापी तो असुर बुद्धि किये अपने हठ की टेक पर है जिससे इसके हाथ से यह बचे सो उपाय किया चाहिए। ऐसे विचार मन में कहने लगे अब तो इससे यों कह देवकी को बचाऊँ कि जो पुत्र मेरे होगा सो तुम्हें दूँगा, पीछे किसने देखी है, लड़का ही न हो, कै यही दुष्ट मरे, यह अवसर तो टरे, फिर समझी जायगी। इस भाँति मन में ठान वसुदेव ने कंस से कहा महाराज! तुम्हारी मृत्यु इसके पुत्र के हाथ न होगी, क्योंकि मैंने यह बात ठहराई है कि देवकी के जितने लड़के होंगे तितने मैं तुम्हें ला दूँगा, यह वचन मैंने तुमको दिया। ऐसी बात जब वसुदेव ने कही तब समझ कर कंस ने मान ली और देवकी को छोड़ कहने लगा कि हे वसुदेव! तुमने अच्छा विचार किया कि ऐसे भारी पाप से मुझे बचा लिया। इतना कह बिदा किये वे अपने घर गये।

कितने एक दिन मथुरा में रहते भये जब पहिला पुत्र देवकी के हुआ, तब वसुदेव ले कंस पै गये और रोता हुआ लड़का आगे धर दिया। देखते ही कंस ने कहा वसुदेव! तुम बड़े सत्यवादी हो मैंने आज जाना, क्योंकि तुमने मुझसे कपट न किया, निर्मोही हो, अपना पुत्र ला दिया, इससे डर मुझे कुछ नहीं है यह बालक मैंने तुम्हें दिया। इतना सुन बालक ले दण्डवत कर वसुदेवजी तो अपने घर आये और किसी समय नारद मुनिजी ने आय कंस से कहा राजा! तुमने यह क्या किया जो बालक उलटा फेर दिया। क्या तुम नहीं जानते कि वसुदेव की सेवा करने को सब देवताओं ने ब्रज में आय

जन्म लिया है और देवकी के आठवें गर्भ में श्रीकृष्ण जन्म ले सब राक्षसों को मार भूमि का भार उतारेंगे। इतना कह नारद मुनि ने आठ लकीरें खींच गिनवाईं जब आठ ही आठ गिनती में आईं तब डर कर कंस ने लड़के समेत वसुदेवजी को बुला भेजा। नारद मुनि तो यों समुझाय बुझाय चले गये, और कंस ने वसुदेव से लड़का ले मार डाला। ऐसे जब पुत्र होय तब वसुदेव ले आवें और कंस मार डाले। इसी रीति से छः बालक मारे। तब सातवें गर्भ में शेष रूप जो श्रीभगवान तिन्होंने आ बास लिया। यह कथा सुन राजा परीक्षित ने शुकदेव मुनि से पूछा महाराज! नारद मुनि ने जो अधिक पाप करवाया तिसका ब्योरा समझा कर कहो जिससे मेरे मन का सन्देह जाय। श्रीशुकदेवजी बोले राजा! नारदजी ने तो अच्छा विचारा कि यह अधिक अधिक पाप करे तो श्रीभगवान तुरन्त ही प्रकट होवें।

तीसरा अध्याय

फिर शुकदेवजी राजा परीक्षित से कहने लगे कि राजा जैसे गर्भ में हरि आये और ब्रह्मादिक ने गर्भस्तुति करी और देवी जिस भाँति बलदेवजी को गोकुल ले गई तिस रीति से कथा कहता हूँ, एक दिन कंस अपनी सभा में आय बैठा और जितने दैत्य उसके थे तिन को बुला कर कहा—सुनो, सब देवता पृथ्वी में जन्म ले आये हैं, इमसे अब उचित यही है कि तुम जाकर सब यदुवंशियों का ऐसा नाश करो जो एक भी जीता न बचे।

यह आज्ञा पा सब को दण्डवत कर चले, नगर में आ ढूँढ ढूँढ पकड़ पकड़ लगे बाँधने; खाते, पीते, खड़े, बैठे, सोते, जागते, चलते, फिरते जिसे पाया तिसे न छोड़ा, घेर के एक ठौर लाये और सब जला डुबो डुबो पटक पटक दुःख दे दे सब को मार डाला। इसी रीति से छोटे, बड़े, भयावने, भाँति भाँति के भेष बनाए, नगर नगर, गाँव गाँव, गली गली, घर घर, खोज खोज, लगे मारने और यदुवंशी दुख पाय पाय, देश छोड़ छोड़ जी ले ले भागने लगे।

तिसी समय वसुदेव की जो और स्त्रियाँ थीं सो भी रोहिणी समेत मथुरा से गोकुल में आईं, जहाँ वसुदेवजी के परम मित्र नन्दजी रहते थे। तिन्होंने अति हित से आसरा भरोसा दे रक्खा। वे आनन्द से रहने लगीं। जब कंस देवताओं को यों सताने और अति पाप करने लगा, तब विष्णु ने अपनी आँखों से एक माया उपजाई, सो हाथ बाँध सन्मुख आई। तिसे कहा तू अभी संसार में जा मथुरापुरी के बीच अवतार ले, जहाँ दुष्ट कंस मेरे भक्तों को दुःख देता है और कश्यप अदिति, जो वसुदेव देवकी हो ब्रज में गये हैं, तिनको मूँद रक्खा है। छः बालक तो तिन के कंस ने मार डाले, अब सातवें गर्भ में लछमनजी हैं, उनको देवकी की कोख से निकाल गोकुल में ले जा कर इस रीति से रोहिणी के पेट में रख दे जो कि कोई दुष्ट न जाने और सब वहाँ के लोग तेरा जस बखानें।

इस भाँति माया को समझाय श्रीनारायण बोले कि तू भी पहले जाकर यह कार्य करके नन्द के घर में जन्म ले, पीछे

वसुदेव के यहाँ अवतार ले, मैं भी नन्द के घर आता हूँ। इतना सुनते ही माया झट मथुरा में आई और मोहिनी का रूप बन वसुदेव के गेह में पैठ गई।

चौपाई।

जो छिपाय गर्भ हर लिया। जाय रोहिणी को सो दिया॥
जाने सब पहला आधान। भये रोहिणी के भगवान॥

इस रीति से श्रावण सुदी चौदस बुधवार को बलदेवजी ने गोकुल में जन्म लिया, और माया ने वसुदेव देवकी को जा स्वप्न दिया कि मैंने तुम्हारा पुत्र गर्भ में लेजा रोहिणी को दिया है, सो किसी बात की चिन्ता मत कीजो। सुनते ही वसुदेव देवकी जाग पड़े और आपस में कहने लगे कि यह तो भगवान ने भला किया पर कंस को इसी समय जताया चाहिए, नहीं तो क्या जानिये पीछे क्या दुख दे यों सोच समझ रखवारों से बुला कर कहा, तिन्होंने कंस को जा सुनाया कि महाराज देवकी का गर्भ अधूरा गया, बालक कुछ न पूरा भया। सुनते ही कंस घबरा कर बोला कि तुम अबकी बेर चौकसी करियो क्योंकि मुझे आठवें ही गर्भ का डर है, जो आकाशवाणी कह गई है।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले हे राजन्! बलदेवजी तो यों प्रकटे और जब श्रीकृष्ण देवकी के गर्भ में आये, तभी माया ने जा नन्द की रानी यशोदा के पेट में वास लिया। दोनों गर्भ से थीं एक पर्व में देवकी यमुना न्हाने गई। वहाँ संयोग से यशोदा भी आन मिलीं तो आपस में दुख की चर्चा चली। निदान यशोदा ने देवकी को वचन दे कहा मेरा बालक मैं रखूँगी, अपना

तुझे दूँगी ऐसे वचन दे यह अपने घर आई और वह अपने। जब कंस ने जाना कि देवकी का आठवाँ गर्भ रहा, तब आ वसुदेव का घर घेरा चारों ओर दैत्यों की चौकी बैठा दी और वसुदेव को बुला कर कहा कि अब तुम मुझसे कपट मत कीजो, अपना लड़का ला दीजो, तब तो मैंने तुम्हारा ही कहना मान लिया था।

ऐसे कह वसुदेव देवकी को बेड़ी और हथकड़ी पहिराय एक कोठे में मूँद कर, ताले पर ताले दे निज मन्दिर में आ, मारे डर के उपवास कर सो रहा। फिर भोर होते ही वहाँ गया जहाँ वसुदेव देवकी थे। गर्भ का प्रकाश देख कहने लगा कि इसी यमगुफा में मेरा काल है; मार तो डालूँ पर अपयश से डरता हूँ, क्योंकि अति बलवान् हो स्त्री को हनना योग्य नहीं, भला इसके पुत्र ही को मारूँगा। यों कह बाहर आ गज सिंह श्वान और अपने बड़े बड़े योद्धा वहाँ चौकी को रखाए, और आप भी नित चौकसी कर आवे; पर एक पल भी कल न पड़े, जहाँ देखे तहाँ आठ पहर चौंसठ घड़ी कृष्ण रूप काल ही दृष्टि आवे, तिसके भय से रात दिन चिन्ता में गँवावे।

इधर कंस की तो यह दशा थी, उधर वसुदेव और देवकी पूरे दिनों महाकष्ट में श्रीकृष्ण को ही मनाते थे, कि इसी बीच में भगवान ने आ तिन्हें स्वप्न दिया और इतना कह तिनके मन का सोच दूर किया कि हम वेग ही जन्म ले तुम्हारी चिन्ता मेटते हैं, तुम अब मत पछिताओ। यह सुन वसुदेव देवकी जाग पड़े, तो इतने में ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्रादिक सब देवता अपने अपने विमान अधर में छोड़, अलख रूप बन, वसुदेव के गृह में आये और हाथ

जोड़ जोड़ वेद गाय गाय गर्भस्तुति करने लगे। तिस समय विनको तो किसी ने न देखा, पर वेद की ध्वनि सबने सुनी। यह अचरज देख सब रखवाले अचम्भे में रहे और वसुदेव देवकी को निश्चय हुआ कि भगवान वेग ही हमारी पीर हरेंगे।

चौथा अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले राजा! जिस समय श्रीकृष्णचन्द्र जन्म लेने लगे, तिस काल सब ही के जी में ऐसा आनन्द उपजा कि दुःख नाम को भी न रहा। हर्ष से वन उपवन हरे हो हो फलने फूलने, नदी नाले, सरोवर, झरने, तिन पर भाँति भाँति के पक्षी कलोलें करने और नगर नगर गाँव गाँव घर घर मङ्गलाचार होने; ब्राह्मण यज्ञ रचने; दशों दिशा के दिग्पाल हर्षने; बादल ब्रजमण्डल पर फिरने; देवता अपने अपने विमानों में बैठे आकाश से फूल बर्षाने; विद्याधर, गन्धर्व, चारण, ढोल दमामे, भेरी बजाय बजाय गुण गाने; और एक ओर उर्वशी आदि सब अप्सरा नाचने लगी थीं; कि ऐसे समय भादों बदी अष्टमी बुधवार रोहिणी नक्षत्र में आधीरात को श्रीकृष्णचन्द्र ने जन्म लिया और मेघवर्ण, चन्द्रमुख, कमलनयन हो पीताम्बर काछे, मुकुट धारे, वैजयन्तीमाल और रत्नजड़ित आभूषण पहिरे, चतुर्भुज रूप किये, शंख, चक्र, गदा, पद्म लिये वसुदेव देवकी को दर्शन दिया। देखते ही अचम्भित हो विन दोनों ने ज्ञान से विचारा तो आदि पुरुष को जाना। तब हाथ जोड़ विनती कर

कहा, हमारे बड़े भाग्य जो आपने दर्शन दिया और जन्म
निवेड़ा किया ।

इतना कह पहली कथा सब सुनाई, जैसे जैसे कंस
दुःख दिया था । वहाँ श्रीकृष्णचन्द्र बोले, तुम अब किसी
की चिन्ता मन में मत करो, क्योंकि मैंने तुम्हारे दुःख के
करने ही के हेतु अवतार लिया है; पर इस समय मुझे गो
पहुँचा दो और इसी बिरियाँ यशोदा के लड़की हुई है सो
को ला दो । अपने जाने का कारण कहता हूँ सो सुनो ।

दो०—नन्द यशोदा तप कियो, मोही सो मन लाय ।
देखो चाहत बाल सुख, रहौं कछुक दिन जाय ॥

फिर कंस को मार आन मिलूँगा । तुम अपने म
धैर्य धरो । ऐसे वसुदेव देवकी का ज्ञान गया और जान
हमारे पुत्र भया । यह समझ दश सहस्र गाय मन में सङ्कल्प
लड़के को गोद में उठा, छाती से लगा लिया । उसका मुख
देख दोनों लम्बी साँसें भर भर आपस में कहने लगे,
किसी रीति से इस लड़के को भगा दीजे तो कंस पापी के
से बचे । वसुदेव बोले—

चौपाई

विधना बिन राखे नहिं को‌ई । कर्म लिखा सोई फल होई ।
तब कर जोरि देवकी कहै । नन्द मित्र गोकुल में रहै ।
पीर यशोदा हर हमारी । नारि रोहिणी तहाँ तिहारी ।

उस बालक को वहाँ ले जाओ । यों सुन वसुदेव अ
कर कहने लगे कि इस कठिन बन्धन से छूट कैसे ले जा

जो इतनी बात कही, तो सब वैसे ही भये रखवाले सब सोय गये और हथकड़ी बेड़ी खुल पड़ीं, चारों ओर के किवाड़ खुल गये, पहरुए अचेत नींद-बस भये तब फिर वसुदेवजी ने श्रीकृष्ण को सूप में रख सिर पर धर लिया और झट पट ही गोकुल को प्रस्थान किया।

सो०—ऊपर बरसैं देव, पीछे सिंह जु गर्जई।
सोचत हैं वसुदेव, यमुना देख प्रवाह अति॥

नदी तीर खड़े हो वसुदेव विचारने लगे कि पीछे तो सिंह बोलता है और आगे अथाह यमुना बह रही है। अब क्या करूँ। ऐसा कह भगवान का ध्यान धर यमुना में पैठे, ज्यों ज्यों आगे जाते थे, त्यों त्यों नदी बढ़ती थी। जब नाक तक पानी आया तब तो ये निपट घबराये। इनको व्याकुल जान, श्रीकृष्ण ने अपना पाँव बढ़ाया, हुंकार दिया, चरण छूते ही यमुना थाह हुई। वसुदेव पार हो नन्द की पौर पर पहुँचे वहाँ किवाड़ खुले पाये। भीतर धँस कर देखें तो सब सोए पड़े हैं। देवी ने ऐसी मोहनी डाली थी कि यशोदा को लड़की के होने की भी सुधि न थी। वसुदेवजी ने कृष्ण को तो यशोदा के निकट सुला दिया और कन्या को ले घट अपना पन्थ लिया। नदी उतर फिर आये जहाँ, बैठी देवकी शोचती थी वहाँ। कन्या दे वहाँ की कुशल कही। सुनते ही देवकी प्रसन्न हो बोलीं हे स्वामी! हमें कंस अब मार डाले तो कुछ चिन्ता नहीं, क्योंकि इस दुष्ट के हाथ से पुत्र तो बचा।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित से कहने लगे कि जब वसुदेव लड़की को ले आये, तब किवाड़

ज्यों के त्यों भिड़ गये और दोनों ने हथकड़ियाँ बेड़ियाँ पर्ह
लीं, कन्या रो उठी। रोने की धुनि सुनि पहरुए जागे तो अपने अ
शस्त्र ले ले सावधान हो, लगे तुपक छोड़ने। तिनका शब्द
लगे हाथी चिंघाड़ने, सिंह दहाड़ने और कुत्ते भौंकने। ति
समय अँधेरी रात्रि के बीच बर्त्ते में एक रखवाले ने हाथ जं
कंस से कहा महाराज! तुम्हारा वैरी उपजा। यह सुन
मूर्छित हो गिरा।

गुफा के राजगृह का वर्णन

हे प्रिय बन्धु! तुम्हारे मन में जो अनेक कल्पना धीरे धीरे
उठा करती हैं, उन पर सहज ही में विश्वास कर लेते हो और
जो अनेक झूठे झूठे मनोरथ हृदय में उत्पन्न होते हैं, बड़ी
अभिलाषा से उनका पीछा करते हो, और इस बात की आशा
रखते हो कि अल्पावस्था में जो बात नहीं प्राप्त हुई, वह अधिक
अवस्था में हो जायगी और आजावधि जो कुछ न्यूनता रह गई
है वह कल ही पूरी हो जायगी—तो तुम को चाहिए कि
मकरन्द देश के राजकुमार धैर्यसिन्धु के इतिहास को ध्यान
देकर सुनो।

धैर्य्यसिन्धु उस महाधर्म्मी महाराज का चौथा पुत्र था जिसके
राज्य में से श्रीभागीरथी नदी निकल कर बहती है, जिस नदी के
प्रवाह से अनेक आवश्यक वस्तु बहुतायत से उत्पन्न होती हैं
और जिसका दश के उत्तम समस्त [illegible] में फैल जाता है

जाया करते थे । इस सरोवर का विशेष जल एक सोते के द्वार उत्तर दिशा की अँधेरी गुफा में होकर बाहर जाता था । यह जल अति भयानक शब्द करता करता परम्परा से ढालू मार्ग से नीचे गिरता था, यहाँ तक कि उस जलपात का शब्द कुछ भी कर्ण गोचर नहीं होता था ।

ये पर्वत चारों ओर वृक्षों से ढके थे और इन नदियों के त पर नाना भाँति के फूल फूल रहे थे । जब वायु अति वेग से चलते थे, तब नाना प्रकार के पदार्थ इन पर्वतों से नीचे आते थे और प्रत्येक मास में बहुत फल इन वृक्षों से पृथ्वी पर गिरते थे । सब प्रकार के बनैले और घरैले जीव जन्तु, जो कि घास अथवा अन्य छोटे छोटे वृक्षों का आहार करते थे मांसाहारी पशुओं से इन पर्वतों के कारण निर्भय होकर इस विस्तीर्ण स्थान में विचरते थे। कहीं बहुत से चतुष्पद पशु झुण्ड के झुण्ड पृथ्वी पर चरते थे, कहीं इसी वन के धरातल के स्थानों में मांसाहारी पशु कल्लोल कर रहे थे, कहीं हर्षित अजशावक चट्टानों पर कूद रहे थे, कहीं चतुर और छली बन्दर वृक्षों पर खेल रहे थे, और, कहीं गम्भीर और घोर मतंग आच्छादित स्थानों में विश्राम कर रहे थे । संसार की सब प्रकार की मनोहर और सुखद वस्तु इस स्थान पर एकत्रित की गई थीं जो वहाँ के निवासियों को किसी प्रकार का अप्राप्य न थीं ।

इस स्थान की विस्तीर्ण और उर्वरा भूमि वहाँ के निवासियों को सब प्रकार की आवश्यक वस्तुओं से सन्तुष्ट करती थी और प्रत्येक वर्ष में जब कि लोहे का फाटक अति गाजे बाजे से खुलता

था और महाराज अपने बालकों को देखने के लिए भीतर जाते थे, तो जो कुछ न्यूनता रहती थी वह पूरी की जाती थी। और आठ दिवस के भीतर सब मनुष्यों को जो उस गुफा में रहते थे, अपनी अपनी मति के अनुसार एक ऐसी बात कहनी पड़ती थी जो उस भूमि के रहने वालों को आनन्दित कर सके और जिससे उनका कालक्षेप सुखपूर्वक हो। उस समय जिसको जो अभिलाषा रहती थी, सो तुरन्त पूरी होती थी। जब मनुष्य, जो कि दूसरों को किसी भाँति से प्रसन्न कर सकते थे, इस उत्सव में हर्षित करने को बुलाये जाते थे। इन राजकुमारों के सन्मुख गवइए लोग एक-लय होकर गाने में अत्यन्त उद्योग करते थे और नाचने वाले अपनी अपनी निपुणता दिखाते थे।

इस आशा से कि इन लोगों को उस आनन्दित गुफा में रहने की आज्ञा हो जिस में केवल वे ही लोग रहने पाते थे जिनका गाना बजाना नवीन प्रकार के सुख देने के योग्य समझा जाता था! इस शून्य स्थान में इस भाँति की अनेक हर्ष और सुख की सामग्री एकत्र की गई थी, यहाँ तक कि वे लोग जो इसमें प्रथम बार नहीं जाते थे, सदा वहाँ ही रहने की इच्छा करते थे और जो लोग इस में एक बेर जाते थे फिर निकलने नहीं पाते थे, इस अभिप्राय से कि वे लोग पृथ्वी के और नगरों का वृत्तान्त न जान सकें। इसी भाँति प्रति वर्ष इसमें नवीन उत्सव हुआ करते थे और प्रति [illegible] बहुत से मनुष्य इसमें रहने के इच्छुक होते थे। यह राजमन्दिर [illegible] के एक [illegible] [illegible] के [illegible] ऊँचा एक शिखर पर बना था। इसमें और बहुत से मन्दिर थे [illegible] कि

उन मनुष्यों की मर्य्यादा के अनुसार जो इसमें रहते थे कम अथवा विशेष आभूषित थे। इन गुहों की छत भारी भारी पत्थरों से धनुषाकार पटी थी और इनके जोड़ बहुत प्राचीन होने के कारण अति कठोर हो गये थे।

यद्यपि यह राजमन्दिर सैकड़ों वर्ष का बना हुआ था तथापि आकाश की वृष्टि और मध्यदेश की आँधियों से किञ्चित् मात्र भी नहीं बिगड़ता था, यहाँ तक कि उसके जीर्णोद्धार की कुछ आवश्यकता नहीं पड़ती थी।

यह मन्दिर ऐसा विस्तीर्ण था कि इसका सम्पूर्ण वृत्तान्त उन वृद्ध अधिकारियों के अतिरिक्त, जिनको कि इस स्थान के गुप्त वार्त्ताओं के भेद अपने से पूर्व क्रमानुसार अधिकारियों के द्वारा ज्ञात होते थे दूसरा कोई भी न जानता था, मानो इसके निर्माण की रीति की स्थूलानेख्य-शङ्का से निज हस्त से लिखी थी। प्रत्येक गृह में जाने के हेतु एक प्रत्यक्ष और एक गुप्त मार्ग था। प्रत्येक चतुष्क अप्रकट छत्रों से, जो ऊपर के खण्ड में थे या भूम्यन्तर्गत मार्गों से जो नीचे के गृहों में थे परस्पर मिले हुए थे, बहुत से स्तम्भों के अभ्यन्तर भाग पाते थे। पर देखने वाले अनुमान भी न कर सकते थे, जिसमें कि पूर्व समय के अनेक महाराजों ने अपने अपने धन का सञ्चय कर एकत्र किया था। इसका छिद्र सङ्गमरमर से बन्द रहता था और प्रजासम्बन्धी अत्यावश्यक प्रयोजन के अतिरिक्त और कदापि नहीं खुलने पाता था। इस धन का ब्योरा एक पुस्तक में लिखा जाता था, जो स्वयं एक ऊँचे दुर्ग में गुप्त की जाती थी और

जिसमें कि राज्याधिकारी कुमार के साथ केवल महाराजा ही जाते थे।

दूसरा परिच्छेद

सुखमयी घाटी में धैर्य्यसिन्धु की अप्रसन्नता।

मकरन्द के राजकुमार और राजकन्याएँ रात्रि दिवस ऐसे गुणियों से सम्पन्न थे जो दूसरों के प्रसन्न करने में अति निपुण थे। वे सब प्रकार सांसारिक सुख और चैन का अनुभव करते हुए इन पूर्वोक्त स्थानों में वास करने लगे। सब प्रकार की वस्तुओं का, जो मनुष्य को किसी भाँति प्रफुल्लित-चित्त कर सकती हैं वे स्वेच्छापूर्वक भोग करते थे। सुगन्धमयी वाटिकाओं में विचरा करते और सुदृढ़ अगम्य दुर्गों में शयन किया करते थे। उनको अपनी वर्त्तमान दशा में हर्षित करने के निमित्त सब भाँति के प्रयत्न किये गये थे। वृद्धजन जो उनकी शिक्षा के हेतु नियत किये गये थे, पर्वतों के बाहर के मनुष्यों के जीवन में अनन्त क्लेश और दुःख हैं इसके अतिरिक्त और कुछ उन्हें न बतलाते थे, सदैव यही कहा करते थे कि इन पर्वतों के दूसरी ओर के प्रदेश आपत्ति और क्लेश से पूरित हैं, जहाँ परस्पर ईर्ष्या, द्रोह और वाक्-कलह आदि बातें निरन्तर मची रहा करती हैं और जो स्थान आधि और व्याधि से पूर्ण हैं, जहाँ मनुष्य ही मनुष्य का आत्मघातक होता है. उन्हें अपने सुख की उत्कण्ठा जनने के हेतु उनके सम्मुख अनेक प्रकार के कीर्तन और गीतों का गान हुआ करता जिन गीतों में केवल सुखमयी उत्पत्ति

इन्हीं गीत वाद्य के आनन्द पर उसका चित्त स्थिर करने का बहुत कुछ यत्न किया करते थे, पर वह उनकी ओर तनिक भी ध्यान न देता और उसके आह्वान और प्रार्थना को क्रुद्ध हो तिरस्कार करता।

वह प्रतिदिन नदियों के तट पर अपना कालक्षेप किया करता जहाँ सुन्दर सघन वृक्ष की श्रेणी उसके मन को अति सुखदायिनी थी। कभी वह शाखाओं पर बैठे हुए पक्षियों की ओर ध्यान देता, कभी जल में क्रीड़ा करती हुई मछलियों को देखता, कभी तुरन्त अपने नेत्रों को सब ओर से फेर पुरोवर्ती पर्वत और हरित भूमि पर प्रक्षेपण करता, जिनमें नाना भांति के जीव जन्तु विचर रहे थे, जिनमें से कोई हरित तृण से अपने अपने उदर पूर्ण कर रहे थे और कोई आच्छादित स्थानों में सुखपूर्वक शयन करते थे।

उसके चित्त की यह प्रवृत्ति देख लोगों का सन्देह दिन दिन उसकी जिज्ञासा में अधिकतर प्रवृत्त होने लगा। एक दिन एक विज्ञ पुरुष जिसके वार्त्तालाप से वह प्रथम अति प्रसन्न होता था, उसकी अप्रसन्नता का कारण जानने की आशा से चुपचाप उसके साथ हो लिया। धैर्यसिन्धु, जो समझता था कि मेरे समीप कोई पुरुष नहीं है कुछ देर तक उस अजसमूह को, जो सामने की शिला पर चर रहा था, एकाग्र नेत्र से अवलोकन कर पश्चात् उनकी दशा से अपनी दशा की तुलना करने लगा। वह यों कहता था—यह कौनसी वस्तु है जिनसे मनुष्य और अन्य अन्य जीवधारियों का तारतम्य ज्ञान होता है? ये सब जन्तु जो हमारे निकट चर रहे हैं उन्हीं दैहिक आवश्यकताओं से पीड़ित होते हैं जिनसे कि मैं जब

ये क्षुधित होते हैं, तब लता आदिकों से अपनी क्षुधा निवारण करते हैं; जब ये पिपासाकुलित होते हैं तब पर्वतों के झरनों से जलपान करते हैं। इस भांति इनकी जब भूख और प्यास दूर हो जाती है, तब सम्यक् तृप्त हो सुखपूर्वक विश्राम करते हैं। दूसरे दिन फिर कर पुनः ये क्षुधापीड़ित होते हैं और इस रीति से अपनी क्षुधा के शान्त होने पर पुनः विश्राम करते हैं। मुझको भी इन्हीं के समान क्षुधा और पिपासा की आवश्यकता होती है, पर इनके नाश होने पर मुझको किञ्चित् भी विश्राम नहीं मिलता। इनके सदृश आवश्यक कर्तव्य कार्यों से मैं भी क्लेशित होता हूँ। उनके निष्पादन करने से मुझको इनकी नाईं सुख की प्राप्ति नहीं होती। मुझे अवकाश का समय उदासीन, क्लेशद और दुर्गम जान पड़ता है, यहाँ तक कि मैं अपने चित्त का वृत्ति को दूसरी ओर फेरने के हेतु फिर क्षुधित होने की अभिलाषा करता हूँ। ये पक्षी फलादिकों को इधर उधर से चुन उपवनों में चले आते हैं और वह वृक्ष की शाखाओं पर बैठ हर्षपूर्वक एक ही अपरिवर्तित मधुर ध्वनि से गान कर अपना समय व्यतीत करते हैं। मैं भी आह्लाद पूर्वक अपना समय बिताने की आशा से अनेक उत्तमोत्तम वादक और गवैयों को बुलवाता हूँ पर वे सब उनको मनोहर शब्द जिनसे कि मैं प्रमुदित हुआ था, आज अति सुखद मालूम होते हैं और मैं समझता हूँ कि कल और भी अधिक सुखद होवे जायँगे। मेरे कर्ण, नेत्र आदि शारीरिक इन्द्रियों की वृत्ति अपने अपने अशेष यथोचित सुखदायक पदार्थों की प्राप्ति से सुखमय हो रही हैं। अब उनके भोग के हेतु कोई वस्तु शेष नहीं, तथापि मुझको

आनन्द का लेश भी नहीं दीखता। निःसन्देह मनुष्य के शरीर में कोई ऐसी गुप्त इन्द्रिय है जिसकी तृप्ति के हेतु इस स्थान में कोई भी लभ्य वस्तु उपयुक्त नहीं है अथवा इन्द्रियों को छोड़ कोई ऐसी आवश्यक पृथक् अभिलाषा है जिसका पूर्ण होना उसकी प्रसन्नता के पूर्व ही अति आवश्यक है।

तदनन्तर वह अपना सिर इधर उधर फेर देखने लगा और चन्द्रोदय का प्रारम्भ जान वासस्थान की ओर चला। मार्ग में अनेक जीवों को देख वह यों कहता था "तुम सब सुख से अपना कालक्षेप करते हो, तुमको उचित है कि तुम उनसे जिनको अपना जीवन स्वयं भार हो रहा है और जो तुम्हारे मध्य इस भांति नष्ट विचार करता है कुछ ईर्षा न करो। और हे मान्य प्राणधारियो! मैं भी तुम्हारे इस जीवन का द्वेषी नहीं हूं क्योंकि यह कुछ मनुष्ययोनि का सुख नहीं। मुझको ऐसे अनेक क्लेश हैं जिनसे कि तुम मुक्त हो परन्तु मुझको उनसे पीड़ित होने का भय जान पड़ता है। यद्यपि वास्तव में वे कुछ भी नहीं। मैं कभी विपत्तियों का स्मरण कर कांप उठता हूं और कभी भविष्य विपत्तियों का अनुमान कर चौंक पड़ता हूं। निःसन्देह उस न्यायी विधाता ने विशेष दुःख मनुष्यों को वेष्टित कर रक्खा है।"

किसी समय ऐसे वाक्यों से यह राजकुमार अपना चित्त-विनोद करता था। दुःखसूचक शब्दों से उनका उच्चारण करना पर अपने नेत्रों को ऐसा फेरा करता जिससे कि वह अपनी बुद्धिमत्ता के कारण हर्षित जान पड़े और जिससे कि वह इस जीव की विपत्तियों से सहज स्वभाव से ज्ञात होने और वाक्-

ौर दर्प से मग्न किया करती है। यदि कीर्ति प्राप्त करने की पूरी
ाशा न हो तो क्या कोई शूरवीर अपनी जान को हथेली पर धर
र अपनी प्रतिष्ठा, अपना वंश, अपनी देश-रक्षा करने के हेतु,
थवा अपने स्वामी और उपकार के कार्य्य-सिद्धि के लिए रणभूमि
ें जाता? यदि यह न होती तो क्या कोई अपना द्रव्य, जो उसने
ा उस के पुरुषों ने बड़े बड़े परिश्रमों से सञ्चय किया है, पर से
रोपकार के लिए निकाल देता? यदि यह न होता तो क्या कोई
ीवन पर्य्यन्त कठिन श्रम करके मनुष्य-जाति के लाभ के लिए
ुन्दर ग्रन्थों की रचना करता, तथा लाभकारक विद्या निकालता?
दि यह न होती तो क्या कोई राजा व देशाधिकारी अपनी
्रजाओं के सुख-चैन बढ़ाने के निमित्त अपने ऊपर कठिन भार
ेता और अपने अपने जीवन को कष्ट में डालता? यदि यह न
ोती तो क्या कोई पुण्यशील धर्म्मोपदेशक दूसरों के उपकार के
र्थ अपना तन, मन, धन अर्पण कर देता? कदापि नहीं। यदि
नुष्य की आत्मा को यह दृढ़ विश्वास न होता कि मेरे सत्कर्म्मों
ी चर्चा इस अनित्य शरीर के नाश के पीछे भी संसार में बनी
हेगी; तो क्या यह मनुष्य को धर्माचरण की प्रेरणा करती? नहीं,
भी नहीं।

एकता

अहा हा! एकता भी इसी पृथ्वी पर ईश्वर ने जीवों को ऐसा
ुण दिया है कि जिसके अवलम्बन से मनुष्य को कोई पदार्थ

कि यदि सब कोई भूमि के स्वामी ऐसा ही कहेंगे तो उस में हानि केवल उन्हीं की नहीं किन्तु सब की है और अकेला यद्यपि इस सब पूर्वोक्त सामग्री से युक्त भी है, तथापि वह वृक्ष बना कर न आप फल खा सकता न दूसरे को खिला सकता है। इस हेतु सब लोगों को उचित है कि थोड़ी सी भूमि में स्वल्प लोगों के बोये हुए इस वृक्ष को बड़ा के फलभागी हों।

देखिये! इस एकता से कितने लाभ होते हैं। (१) प्रथम दो चार लोगों में आने जाने, बैठने उठने, बोलने चालने से ज्ञान होता है। (२) विविध प्रकार का वार्त्तालाप सुनने से बुद्धि तीक्ष्ण होती है। (३) चतुरता आदि गुणों की प्राप्ति होती है। (४) बहुतों से मित्रता होती है जो कि सब रीति से मनुष्य को आनन्ददायिनी है। (५) नाना देश और विषय व्यवहार आदि का ज्ञान होता है। (६) इनके अतिरिक्त ऊपर कहे हुए फूल और फल मिलते हैं। बहुत लोगों ने सुना होगा कि पांडव पाँच भाई थे। जब कि राजसूय यज्ञ हुआ और वहाँ दुर्योधन को जल में स्थल, स्थल में जल का भ्रम हुआ, तब दुर्योधन परम खिन्न होकर शकुनि से पूछने लगा कि मेरी अप्रतिष्ठा का बदला लेना आपको अवश्य उचित है। इस पर शकुनि ने कहा ठीक है, द्यूतक्रीड़ा से पहले उनका सब द्रव्य हरण करना, पुनः द्रव्य हरण होने से अवश्य ही दरिद्र होंगे। दरिद्र होते ही परस्पर बिगाड़ होगा जिससे वे नष्ट होंगे और लज्जित होकर विदेश भाग जायँगे। सारांश यह है कि यदि शकुनि के इस वाक्य के अनुसार पांडव

मतों और धर्मों में, चाहे वे वर्त्तमान काल के हों, चाहे प्राचीन, मनुष्य के लिए यही सर्वोपरि और मुख्य आज्ञा है कि जो वचन वह मुख से निकाले, उनके सत्य और यथार्थ होने का बड़ा ध्यान रक्खे। यही सत्कर्मों का मूल है। देखने में तो वचन तुच्छ जान पड़ता है, परन्तु वास्तव में उसकी मनुष्य पर बुराई भलाई करने के लिए बड़ी सामर्थ्य होती है। हमारी बुद्धि में उस पुरुष से अधिकतर सज्जन और प्रिय कोई नहीं जिसने अपनी बाल्यावस्था से धर्मिष्ठ, पुण्यशील, माता, पिता, और गुरु से सत्यप्रिय, और हितकारी वचन बोलने की शिक्षा पाई हो। ऐसे सत्पुरुषों को दूसरों के साथ उपकार करने की बड़ी सामर्थ्य होती है। किसी बात से मनुष्यों का चित्त ऐसे न हरा जाता है न समझाया जाता है और न शिक्षित किया जाता है, जैसा कि एक सत्यवादी के सच्चे और प्रिय वचनों से। इस संसार के बड़े बड़े महात्माओं में प्रियवक्ता होने का बड़ा दैवी गुण अधिकतर न होता तो कदापि सम्भव न था कि वे अनन्त सांसारिक जीवों को ईश्वर के कठिन मार्ग पर ले जाते।

अब सत्य न बोलने के अनर्थों को सुनिए। हाय! कितने बड़े बड़े उपद्रव मिथ्या बोलने के कारण उठते हैं। यद्यपि कटु वचन देखने में एक छोटी सी बात जान पड़ती है, परन्तु अन्त में उसका परिणाम कैसा बुरा होता है। जिस प्रकार एक छोटे कीड़े के काटने से एक बड़ा हृष्ट पुष्ट जीव व्याकुल हो जाता है, वैसे ही एक व्यङ्ग वचन से एक बड़े स्नेही के चित्त को भी खेद हो जाता है। नीचे के वाक्य हम अपने पाठकगणों के चित्त-विनोदार्थ इङ्गलेण्ड देश के एक परम विशारद धर्मोपदेशक की पुस्तक से अनुवाद करते हैं।

यह कटु और मिथ्या वचन के महा अवगुणों के विषय में लिखता है:—

"*इनसे ही स्नेहियों की प्रीति खट्टी हो जाती है । वे विवा[illegible] जो स्त्री-पुरुष के परस्पर सुख और प्रीति को बढ़ाते थे, इन ही [illegible] कारण प्राणलेऊ होगये थे । वे अधिकार जिनसे बहुत जीवों का उपकार और पालन होता था, इन्हीं के माहात्म्य से जाते रहे । वे उपदेश और शिक्षा जिनसे सैकड़ों प्राणियों को लाभ पहुँचता था, इन्हीं के प्रभाव से निष्फल हो गये । इन्हीं की कृपा से बहुतेरी कुमारियों की प्रतिष्ठा में बट्टा लग गया । वे स्त्रियाँ जिनका सब आदर और सत्कार करते थे, इन्हीं के द्वारा निन्दित मान ली गई । यही बहुधा माता, पिता और पुत्र के बीच में विष बो देते हैं । इन्हीं के कारण ऐसे ऐसे मित्र जो जीवन पर्य्यन्त एक दूसरे की सहायता करते आपस में फूट गये । जीवों को इनके कारण बड़े दुःख होते हैं । कटु वचन और मि[illegible] असह्य और असुभ्य होता है । बहुधा वह विष, जो मनुष्य के शरीर को नाश कर देता है, यत्नों से शान्त किया जाता है, परन्तु कटु वचन का विष मनुष्य के चित्त पर ऐसा घाव मारता है कि वह किसी प्रकार से शान्त ही नहीं आता ।*

कठोर वचन जब एक बार मुख से निकल गया तब फि[illegible] कितना ही पछताओ नहीं लौटाया जा सकता । जैसे एक तीर [illegible] में लगा जाय तो फिर उसके निकालने में बड़ा परिश्रम चाहिए, यदि निकल भी जाय तो चिरकाल तक उस से घाव बना रहता है । इसी प्रकार कटु वचन कभी [illegible] तक वह मनुष्य के चित्त में [illegible]

डाल देता है। बहुधा देखा गया है कि बड़े नामी और प्रसिद्ध जनों को एक अन्यथा वचन निकल जाने का पछतावा वर्षों तक रहा परन्तु वह कहा अनकहा क्योंकर हो सकता है। जब ऐसी बातों का हम विचार करते हैं तब हाय, कैसा पश्चात्ताप होता है कि मनुष्य के चित्त को पाप ने कैसा वश में कर लिया है और सत्य कैसा लोप हो गया है। लाभकारी और सुन्दर विद्या के प्रसङ्ग और उपदेश तो चाहे भूल जायँ, परन्तु कड़ुवे वचन सदा ध्यान में बने रहते हैं। कितना ही समय क्यों न बीत जाय, कितना ही द्रव्य क्यों न व्यय किया जाय, परन्तु कठोर वचन का घाव कभी नहीं मिटता। कटु वचन का विष सब ग़रीब और अमीर के समान ही चढ़ता है। सम्भव है कि जब तुम इसे पढ़ रहे हो, कोई तुम्हारी निन्दा कर रहा होगा और तुम्हारी बुद्धिमानी को मूर्खता, वीरता और साहस को ढिठाई, नम्रता और कोमलता को यश-प्राप्ति करने का दिखावा कहते होंगे। अहो! वाक्शक्ति मनुष्य को ईश्वर ने कैसी कृपा करके दी है। अहो! कैसा अचम्भा है! कौन बता सकता है कि किस प्रकार से मन में तरङ्ग उठती है और फिर किस ढङ्ग से वह चित्त की वृत्ति मानुषी वचन बन के मुख से निकलती है। निस्सन्देह यही बड़ी ईश्वरीय कृपा है और सत्कर्मों के लिए दी गई है। हम अपने वचन के द्वारा दुःखित जनों की आत्मा को सन्तोष दिला सकते हैं, अज्ञानियों को शिक्षा कर सकते हैं, थके हुओं का जी बढ़ा सकते हैं, बलहीनों को पुष्ट कर सकते हैं, दुविधा करने वालों को ढाढ़स बँधा सकते हैं और मरते हुए के लिए ईश्वर से प्रार्थना कर सकते हैं।

३—चार प्रकृति बड़े पुरुषार्थियों की हैं—

(१) सत्यवादी होना ।

(२) संसार को असार जानना ।

(३) भिक्षुक को दान देने में श्रद्धा को सम्मुख करना ।

(४) दुःख सुख में समान धैर्य रखना ।

—चार प्रकृति असन्तोषियों की हैं—

(१) बिना बुलाये किसी के घर जाना ।

) मित्र, शत्रु और ज्ञान-हीन से अपने घर का रोना रोना ।

धनियों के सम्मुख अपने को धनी सा मान बढ़ाना ।

आधी रोटी अपनी छोड़ कर दूसरे की सारी रोटी पर

न देना ।

मूर्खों की हैं—

से मुँह छिपाना ।

को देते देख कर दुःखी होना और चिन्ता करना ।

को देख कर मुँह फेर लेना ।

सर्वस्व धन और आयु स्वप्न-संचय में बिताना ।

निर्धन होने की हैं—

सी होना ।

कार्यों में मूर्खता होनी ।

को अहित समझना ।

एक के देखने को अदेखा करना ।

पाण्डित्य की हैं—

में प्रेम करना ।

यदि हम ईश्वर की ऐसी परम कृपा को व्यर्थ और असत् कामों में लगावें तो महापाप होगा। हाय! यह अवगुण बहुधा सांसारिक मूर्ख मनुष्यों में पाया जाता है, परन्तु विद्या के प्रचार से कहीं कहीं अब घटती पर है। निस्सन्देह सब सत्कर्मों और धर्मों का मूल अपने मुख के वचन का निर्वाह और सत् असत् का विचार है। क्या विना इसके आपस का मेल, विश्वास और भरोसा हो सकता है, जो मनुष्य-जाति की उन्नति और वृद्धि के लिए आवश्यक है?

नीति

इस निम्नलिखित लेख में चुरी प्रकृति का विचार किया है। परन्तु सब प्रकृति चार भाँति की हैं ऐसा नियम रक्खा है।

१—चार प्रकृति ईश्वर के प्रसन्न करने की हैं—

(१) माता, पिता और गुरु की सेवा।

(२) जीवन पर्यन्त ईश्वर के उपकारों को न भूलना।

(३) अपने सर्व व्यवहारों को ईश्वराधीन जानना।

(४ जो कुछ कर्म करना तो जितेन्द्रिय होकर करना।

।८ प्रकृति ईश्वर के अप्रसन्न करने की हैं—

(१) वृथा किसी सत्पुरुष को कलङ्क देना।

(२ माता, पिता और गुरु को कष्ट देना।

(३) धर्मच्युत पुरुष की साक्षी देना।

(४) कुलधर्म्म के विरुद्ध जीविका करना।

(२) वृद्ध और साधु की सेवा में सावधान होना।

(३) भोजन करना और मित्रवर्गों को उदारतायुक्त कराना।

(४) जो कोई अतिथि आवे तो उसके आतिथ्य अर्थात् सेवा में तत्पर होना।

८—चार प्रकृति मूर्ख की हैं—

(१) विद्या में निरुत्साही होना।

(२) नीच का सङ्ग करना।

(३) याचकों के होते हाट हाट वस्तु खरीदते फिरना।

(४) अहङ्कार में लिप्त रहना।

९—चार प्रकृति सन्तों की हैं—

(१) लघु भोजन।

(२) लघु शयन।

(३) लघु वार्तालाप करना।

(४) हरि-नाम-स्मरण आठ प्रहर करना।

१०—चार प्रकृति दानवों की हैं—

(१) निद्रा भोजन अधिक करना।

(२) अपवित्र-भक्षण में प्रीति करना।

(३) निष्प्रयोजन विग्रहाही होना।

(४) मनुष्य मात्र को दुष्ट उपदेश से भ्रष्ट करना।

—चार प्रकृति पशुओं की हैं—

(१) भगवत्-स्मरण से सदा विमुख होना

(२) हित अनहित वस्तु के न जानना

(३) लोलुप होना।

(४) अश्लील भाषा में अभ्यास करना जिससे प्रायः निन्दा हो।

१२—चार प्रकृति नम्रता की हैं—

(१) सर्वदा सज्जनों का भय करना।

(२) मनुष्यमात्र के अधीन होना।

(३) दीनों की चित्तवृत्ति पर सर्वदा ध्यान देना।

(४) विद्वानों का संग करना।

१३—चार प्रकृति अहङ्कारियों की हैं—

(१) वृद्धों के वाक्यों का खण्डन करना।

(२) अपने कहे को श्रेष्ठ मानना।

(३) अपने को संसार भर में भला समझना।

(४) औरों के प्रणाम का उत्तर न देना।

१४—चार प्रकृति सत्यवादी की हैं—

(१) अपना वचन पूर्ण करना।

(२) गदित करने में उत्साही होना, अर्थात् जिनका लेन देन हो उसको गदित करके समझा देना।

(३) समझ करके लेखा चलाना।

(४) गुप्त और प्रकट वस्तु में समानशील होना।

१५—चार प्रकृति मिथ्यावादी की हैं—

(१) मिथ्या शपथ करना।

(२) भरोसा देकर विश्वासघात करना।

(३) लिखे पर प्रतीति नहीं करना।

(४) यत्नपूर्वक मिथ्या साक्षी ढूंढना।

१६—चार प्रकृति लज्जा की हैं—

(१) मधुरभाषी होना।

(२) सर्वदा धैर्य्ययुक्त रहना।

(३) चातुर्य्ययुक्त रहना।

(४) गलियों में, मेलों में, स्त्रियों में बहुधा न जाना।

१७—चार प्रकृति निर्लज्जों की हैं—

(१) पनघट में बैठना।

(२) धनिकों के निकट बिना प्रयोजन बैठना।

(३) बिना विचारे हर एक से मेल बैठना।

(४) स्त्री-गणों से वाक्युद्ध करना और उनको देखना।

१८—चार प्रकृति बहुत भली हैं—

(१) किसी से माँगना नहीं।

(२) गम्भीर हृदय होना।

(३) आत्मा में प्रेम रखना।

(४) अपने भाग का भोजन भी बाँट कर खाना।

१९—चार प्रकृति बहुत बुरी हैं—

(१) सूम होना।

(२) अहङ्कारी होना।

(३) निर्लज्ज होना।

(४) अपूर्ण शिक्षा में पूर्ण अभिमान करना।

२०—चार प्रकृति मनुष्य की हैं—

(१) अपने गुरु का मान रखना

[illegible]

(३) सभा में बिन पूछे नहीं बोलना ।

(४) सर्व समय में शरीर शुद्ध रखना ।

२१—चार प्रकृति शुद्ध हैं—

(१) मुख धोकर ताम्बूल भक्षण करना ।

(२) भोजन के पश्चात् रक्षा करना ।

(३) उज्ज्वल वस्त्र पहनना ।

(४) शरीर को पवित्र रखना, हुक्का नहीं पीना ।

२२—चार प्रकृति पुरुष को प्रतिष्ठित करती हैं—

(१) गूढ़ वार्त्ता किसी से न कहना ।

(२) परधन और परदारा पर दृष्टि न देना ।

(३) गुरु लोगों से मान न चाहना ।

(४) जिह्वा से दुर्वचन मलीन शब्द न कहना ।

२३—चार प्रकृति कठोर हृदय की हैं—

(१) मित्रों को दुःख देना ।

(२) बिना अधिकार प्रवेश करना ।

(३) बिना बुलाये बोलना ।

(४) जो बहिरङ्ग है, अपना हाल नहीं जानता, उसके घर आकर सब गृह का चरित्र कहते रहना ।

२४—चार प्रकृति चातुर्य की हैं—

(१) जो कोई बोले उसके एकही अक्षर से जो उसके जी में है सब जान जाना ।

(२) और जो कुछ गुन पाण्डित्य है उसको भी समझ जाना ।

(३) मित्रों की चित्तवृत्ति को समय-अनुसार जान कर उ
अनुमति देना।

(४) जो कुछ सन्देश किसी से कहना हो तो प्रथम उस
समझ कर जिसके पास जाना उसको दृष्टान्त-प्रमाण
समझाय देना।

२५—चार प्रकृति अज्ञानता की हैं—

(१) साधुओं और परदेशियों से हास्य करना।

(२) सभा में अनधिकार बैठना।

(३) वृथा अपवाद में तत्पर होना।

(४) छोटे बड़े का ध्यान न करके मनमानी बकना।

२६—चार प्रकृति प्रतिष्ठित पुरुषों की हैं—

(१) बहिरङ्ग को कदापि अन्तरङ्ग न होने देना।

(२) किसी से किसी तरह की चाह न करना।

(३) नातेदार और धनियों के घर में कम जाना।

(४) जिस घर में दरिद्र हो उसकी सहायता करना।

२७—चार प्रकृति अप्रतिष्ठित पुरुषों की हैं—

(१) पुत्र और मित्र को दुःखी, अज्ञान और असमर्थादिकों से
विमुख, रख कर अपना पेट भरना।

(२) जाने पहचाने के अधम अपात्र को सम्मानी धनी मान कर
खर्च करना।

(३) घर की वस्तु [illegible] कर वृथा [illegible]।

(४) [illegible] सुनाना।

नीति

क्योंकि धर्म्म ही सब प्राणियों का राजा व पालक है, उसी के द्वारा मनुष्य शासित होता है। यह जीव धर्म्म ही के होने से मनुष्य गिना जाता है, अन्यथा आहार, निद्रा, भय इत्यादि सांसारिक सुखों में पशुओं के समान है। यह धर्म्मयुक्त नीति मनुष्यत्व का मूल है। मनुष्य संसार में चाहे जितने पाप पुण्य करे, चाहे जिस उच्च पदवी को पहुँच जाय, परन्तु बिना धर्म्म के वह फीका है। नेपोलियन, जो बड़ा प्रतापी व बलवान् राजा था, जिसने अपने प्रताप-मार्तण्ड से सम्पूर्ण पश्चिमी राजाओं को अपनी बलरूपी किरणों के द्वारा तेजहीन कर दिया, उसने अपनी सम्पूर्ण आयु देशों के विजय करने में बिताई। उसने किसी अवसर पर अपनी वह उत्तमता नहीं प्रकट की जो उदारता व परोपकार-जनित वृत्तियों से होती है। केवल विजयी सेनापति और देशाधिकारी जब धर्म्मच्युत होने के कारण मानुषी महत्त्व को न पा सके। हार्टली साहब का वचन है कि जितना अहङ्कार और ईर्ष्या, गणित और दर्शनशास्त्रों के जानने वालों में पाया जाता है उतना और किसी में नहीं। यह बात कुछ आश्चर्यमूलक नहीं। पवन के समान इन्द्रियों के वेग को रोक कर उन्हें अपने अधीन करना महाकठिन है, क्योंकि इन्द्रिय वेग अमल और दुराराध्य है। क्योंकि सब कर्म्म इन्द्रियों ही के द्वारा होते हैं, इसलिए इन्द्रियों के वेग को रोक कर नीति-धर्म्म में [illegible] को पाना सहज नहीं। जब मनुष्य उस उत्तमता को [illegible] करके [illegible] आइम्याव और

शोभायमान होता है। लार्ड बैरन के लिए कवि होना सहज था, धूम-यन्त्र का शीघ्रगामी होना प्राकृतिक गुण था, परन्तु बस कवि को ज्ञानवान् होना, असन्तोष को चित्त से दूर रखना, अपने मन को वश करना, ज्ञानी सुजन के समान आचरण रखना; यह कठिन था। इसका उसने कभी क्षणमात्र भी विचार न किया। ऐसा कुशाग्र-बुद्धि और श्रेष्ठ कवि होने पर भी वह नीति-धर्म से विमुख रहने के कारण परम दु:खी रहा और उनके लिए उपदेश का हेतु हुआ जो दूसरों की दशा देख कर उपदेश पाने की इच्छा किया करते हैं। अब सब मनुष्यों को जो जीवनरूपी समुद्र में डूबने से बचा चाहते हैं, योग्य है कि धर्मशास्त्र के इस उपदेश को चित्त की पटरी पर सदैव लिखे रहें। मनुष्य को एक बात अत्यन्त आवश्यक है—इतना आवश्यक धन, सामर्थ्य, बल और चातुरी नहीं, यश और स्वतन्त्रता वरन् आरोग्यता तक नहीं, जैसा शुद्ध आचरण और वश किया हुआ मन है। केवल यही हमें सांसारिक दुःखों से बचा सकता है। यदि हम इसकी सहायता से न बचें तो फिर कोई उपाय बचने का नहीं। इस विषय में कुछ भी सन्देह नहीं कि जब एक मनुष्य आत्मघात कर के यह निश्चय कर कुछ न करे कि "मैं अधिकार न सुधरूँगा तो बिगड़ूँगा भी नहीं" तो वह अवश्य बिगड़े बिना न रहेगा। मनुष्य स्वभाव के अनुकूल जब तक [illegible] न जाने [illegible] और [illegible] के समान वह भी [illegible] और [illegible] के समान [illegible] मन [illegible]।

[illegible]

बहुत उचित है कि नीतिधर्म्म और ईश्वरभक्ति में क्या सम्बन्ध है। इस बात को बहुधा मनुष्य नहीं समझते । कितने विदेश-मतवादी उपदेशकों का नीति-विषय में यह मत है कि उसको ईश्वराराधन से मानों कुछ सम्बन्ध ही नहीं है । यह महा अनर्गल और उनकी अल्पबुद्धि तथा अज्ञानता का चिह्न है जिनका कि ऐसा शास्त्रविरुद्ध बुद्धि से अग्राह्य खोटा मत है। निःसन्देह अशोकादि राजाओं के समान बुद्धिमान् जन सांसारिक विषयों में भले और सुजन हो सकते हैं। बुद्धि और पवित्रता में अपना जीवन काट सकते हैं, यह विश्वास करते हुए कि संसार की अद्भुत रचना अपने आप स्वयम् हो गई है इसका कोई उत्पादक नहीं है । जो भौतिक प्रकृति के नियम उनके फल, उनके स्वाभाविक चुनाव, यथायोग्य दशा, बाह्य संयोगों का यथोचित मेल, और ऐसी ही और नास्तिकता के प्रमाण यह सिद्ध करने के लिए दिया करते हैं कि सृष्टि की रचना २४ तत्त्वों के द्वारा होना प्राकृतिक है। परन्तु तत्त्वदर्शी ज्ञानवान् मनुष्य ऐसे ज्ञानियों के विचारों को तुच्छ बुद्धि का फल समझते हैं और उनके नीति-धर्म्म एक ऐसे मनुष्य की नाईं हैं जो अपने सब राज पर प्रसन्नतापूर्वक देखे, राजा की सेना में उत्साहयुक्त काम करे और अपने नगर के निमित्त वीरतापूर्वक युद्ध करे, परन्तु अपने राजा के सम्मुख आने पर उसे साष्टाङ्ग प्रणाम न करे। यदि ऐसा जन राजद्रोही न माना जायगा तो बेढङ्गा, असभ्य, उजड्ड और शीलहीन तो [illegible] इसी प्रकार वे नास्तिक हैं जो बिना ईश्वर को [illegible] को तुच्छ समझते हैं। ऐसे नर ठीक उस मूर्ख के समान [illegible] अपने [illegible] में कांसी

लगाने के लिए रेशम की घटता है। वे अज्ञानी ऐसे हैं जिनको सदा अपनी विद्या का मद बना ही रहता है। उसके अतिरिक्त किसी को नहीं मानते जिनको कि वे नेत्रों से देख सकें और हाथ से छू सकें; परन्तु वे अल्पबुद्धि नर नहीं जानते कि हमारी विद्या और ज्ञान से परे कोई दूसरा पदार्थ है, और वह अनन्त जीवन है, जीवन केवल बलवती बुद्धि है और बुद्धि ईश्वर का दूसरा नाम है। इस सर्वोत्कृष्ट तत्त्व को त्याग करके नीति की शिक्षा ऐसी नितान्त व्यर्थ है कि बिना जेम्सवाट साहब * की बुद्धि के धुएँ की गाड़ी बन गई। यह कहना ऐसा है कि जैसे कोई एक नगर भर के पानी के नलों का चित्र तो उतार ले और यह न लिखे कि उनमें जल कहाँ से आता है, अथवा कोई सब देह का चित्र उतारे और शिर न उतारे। इस कारण हमारे पाठकों को उचित है कि बिना अपने सनातन सद्धर्म्म के अनुयायी हुए वर्त्तमान काल के फीके नीति-धर्म्मों को न मानें। चित्त का निर्मल और सद्भाव रखना यही सब धर्म्मों का मूल जनक है जो देवाराधन के बिना मिल ही नहीं सकता।

अब हम थोड़े उन सद्धर्म्मों का वर्णन करेंगे जिनके पाने के निमित्त उन युवा नरों को सद्भाव से अभिलाषा होना योग्य है जो आनन्दपूर्वक धर्म्मसहित अपना सामाजिक जीवन बिताना चाहते हैं, इस सामाजिक जीवनरूपी रणभूमि में ऐसे देवी अवसर और काल आ जाते हैं जिनमें धैर्य और योग्यतायुक्त काम करने से सुन्दर जय मिलता है और तनिक हो चूकने पर उलटी मुँह की

* प्रथम इन्हीं ने इञ्जन निकाला है।

जानी पड़ती है। गुलाब वसन्त ऋतु में फूलते हैं इसी भांति कोई कोई उत्तम गुण और धर्म ऐसे हैं जो बाल्यावस्था में न प्रकट हुए तो दीर्घायु होने पर उनके होने की कोई आशा हो ही नहीं सकती।

आज्ञापालन।

प्रथम गुण और धर्म जो सब प्राणियों में होना योग्य है, अपने माता, पिता, गुरु तथा मान्य पुरुषों की आज्ञा का पालन करना है। आज कल, बहुधा नवशिक्षित पुरुष स्वतन्त्रता को बहुत प्रिय समझते हैं, परन्तु पहले यह समझ लेना अवश्य है कि इस शब्द का अर्थ क्या है। स्वतन्त्रता का अर्थ क्या है—स्वतन्त्रता का यह अर्थ है कि एक जन सम्पूर्ण सामाजिक कृत्रिम दुःखदायी बन्धनों से मुक्त रहे, ऐसी स्वतन्त्रता निस्सन्देह बहुत ही अच्छी वस्तु है, परन्तु उस की भी यथोचित सीमा है। जीवन की दौड़ में वह चलने का स्थान है। वह मनुष्य के [illegible] बनाता है, परन्तु यह कुछ नहीं प्रकाश करता कि [illegible] अन्त में जीवन भर के [illegible] होते हैं सब [illegible] नियम [illegible] परन्तु नियमानुसार चलना [illegible] हैं बहुधा नियम जिनके अनुसार [illegible] हो नहीं होते जिन्हें उनसे [illegible] करने के रहते हैं जिन्हें दूसरे सह [illegible]

उन्नति, सुख और भलाई के लिए बाँधे हैं। बस यह सिद्ध है कि वह जो समाज का सुशील, हितकारक और प्रिय सभासद होना चाहे प्रथम आज्ञापालन के धर्म्म को सीखे। देशव्यवस्था, राज प्रबन्ध, नियमित धर्म्म और जीवन के सब काम इसी सिद्धान्त के मूल पर ठहरे हुए हैं। एक मनुष्य को केवल अपने ही विषय में स्वतन्त्रता हो सकती है। उसको इतनी स्वतन्त्रता न देनी उसकी मनुष्यता नष्ट करनी है। इसके बिना वह केवल एक यन्त्र के सदृश होगा। परन्तु समय पर वह उन नियम और बन्धनों से पृथक् नहीं हो सकता जो सबको बाँध कर एकत्रित किये हुए हैं। यद्यपि वह समाज में सबसे उच्च पदवी पर पहुँच गया हो, परन्तु तो भी इन बन्धनों से स्वतन्त्र नहीं हो सकता, वरन् उस दशा में ये बन्धन और नियम और अधिक वेग से अपना बल और प्रभाव उस पर प्रकट करते हैं जैसा पाँव पर उनके आनन्दित और सुखी होने का प्रभाव होता है वैसा ही प्राणी के शिर तथा सर्वाङ्ग में होता है। समाज में प्रत्येक सभ्य का उसकी रक्षा के निमित्त यह परम धर्म्म है कि नियमित व्यवस्थाओं का पालन करें। महात्मा 'पाल' ने इस धर्म का बड़ी गम्भीरता और बुद्धिमानी से प्रतिपादन किया है। जब कभी तुम्हारे मन में सामाजिक नियमों के उल्लंघन करने की इच्छा हो आवे और ये तुम्हें असह्य मालूम होवें, तो मेरी सम्मति है कि तुम कारन्थियन के १२ अध्याय के १४ से ३१ पद तक ध्यानपूर्वक पाठ करो। नियम के विरुद्ध अपनी इच्छा के अनुसार काम कर बैठना द्वार की सन्धि के समान है, जो इस प्रकार थोड़ी हानी होती कालान्तर में बड़ किलों के समान

हो आदर्श। एक रोमी इतिहास-लेखक बड़े पूनिक युद्ध के सेनापति से इस गुण को बड़ी प्रशंसा के साथ कहता है कि वह आज्ञापालन और आज्ञा देना दोनों जानता था। इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि आज्ञापालन और आज्ञा देना दोनों परस्पर एक दूसरे से परम विरुद्ध बातें हैं, परन्तु तथापि एक के भली भांति साधन करने से दूसरा गुण प्राप्त होता है। वह जो केवल आज्ञा ही करने की प्रकृति रखता है, और जिसने प्रथम आज्ञापालन करना नहीं सीखा, उन नियमों को नहीं जानता जो बल और सामर्थ्य के साथ उसके लाभ के अर्थ लगाये रहते हैं। बालकों को योग्य है कि प्राचीन रोमन लोगों की भांति अपने गुरुजनों की आज्ञा का पालन करें, यह गुण बालकों में अत्यन्त प्रशंसनीय होता है, जिस काम को बड़े करने की आज्ञा करें, उसको यथावत् पालन करना योग्य है। माता, पिता, गुरु और स्वामी किसी की बात से इतना प्रसन्न नहीं होते जितना कि उनके नियमानुसार सत्यतापूर्वक निर्धारित समय पर नियमित काम करने से होते हैं, इसमें कुछ अचरज नहीं। क्योंकि प्रत्येक जन को अपना अपना बन्धेज और सत्यता के साथ करने से सब समाज में आनन्द और एकता का सुख बना रहता है। घड़ी के ठीक ठीक चलने से निश्चित समय जान लिया जाता है। यदि तुम्हारा नियत कार्य्य दूसरे मनुष्य के काम के अन्तर्गत आवश्यक जोड़ है तो तुम उसके हेतु घड़ी हो, और उसको तुम्हारे ऊपर भरोसा करना पड़ता है।

एक समाज के किसी सभ्य के लिए इससे अधिकतर कुछ भी प्रशंसासूचक नहीं हो सकता कि यह काम जिसके करने को उससे

आशा की जाय वन, मन से करे और सदैव उसी समय पहुँचे जब उसके पहुँचने की आशा की जाय।

जनमेजय और वैशम्पायन का संवाद।

भरतखण्ड के मध्यवर्ती विन्ध्याचल के समीप एक विन्ध्यानन नाम वन है। उसके मध्य में गोदावरी नदी के तट पर अगस्त्य ऋषि का आश्रम था जहाँ त्रेतायुग में श्रीभगवान रामचन्द्र पिता की आज्ञा मान कर, सीता-लक्ष्मण-सहित पञ्चवटी में पर्णशाला बनाकर कुछ दिन टिके थे, जहाँ दुष्ट रावण-प्रेरित मारीच नाम निशाचर ने सोने का मृग बन कर सीताहरण कराया था, जहाँ जानकी-वियोग-ग्लानित राम और लक्ष्मण सजल नयन और गद्गद वचन से नाना प्रकार का विलाप और सन्ताप करते थे, जिसको अवलोकन कर वहाँ के पशु, पक्षी और लता द्रुमादिक भी दुःखित होने थे! उसी आश्रम के समीप एक पम्पा नाम सरोवर था, जहाँ श्रीरामचन्द्रजी ने एक ही तीर से सात ताल को वेध कर बालि को मारा था। उस स्थान के बहुत निकट एक बड़ा भारी शाल्मली का वृक्ष है, उसकी जड़ में एक बड़ा अजगर बहुत दिनों से रहता था, उस वृक्ष की शाखा इतनी लम्बी और छतनार थी, मानो गगनमण्डल के नापने के लिए हाथ फैलाये है, और उसकी पेड़ी इतनी ऊँची थी जैसे कोई पृथ्वी के चतुर्दिक देखने को सिर उठाये हो। उस वृक्ष के स्कन्धों में कुत्तों पर भाँति भाँति के पत्तों का खोता बना कर अनेक प्रकार के शुक, सारिका और

भांति भांति के पक्षी सुखपूर्वक वास करते थे। यह वृक्ष बड़ा पुरातन था और पतझड़ होने पर भी उसमें रहनेवाले पक्षियों के बच्चों के रात्रि दिन उसमें रहने से वह पत्रमय दीख पड़ता था; उस पर के पंखरहित शावक कभी कभी उसके फल समान जान पड़ते थे। पक्षिगण अपने अपने गोंते में सोते और प्रातःकाल आहार की खोज में गोल बांध कर नभमार्ग में उड़ जाते; उस समय ऐसी शोभा मालूम होती थी जैसे कोई हरी दूब से विकसित खेत उड़ा चला जाता है। वे सब दिग्दिगन्त में आहार एकत्र कर आप भी खाते और अपने बच्चों के लिए मुँह में भर भर कर ले आते थे।

उसी प्राचीन वृक्ष के एक खोखले में मेरे माता-पिता भी रहते थे। दैवसंयोग से मेरी माता गर्भवती हुई और मेरे उत्पन्न होने के अनन्तर प्रसवपीड़ा से व्याकुल हो मर गई। पिता हमारे बड़े वृद्ध थे और स्त्री के मरने से यद्यपि अधिक शोकचित्त हुए, तथापि प्रीतिवश हो, शोक को छोड़ हमारे लालन पालन में समय काटने लगे। यद्यपि उनको चलने की कुछ शक्ति न थी, तब भी धीरे धीरे उस वृक्ष के नीचे उतर कर जो कुछ आहार पृथिवी पर गिरा हुआ मिलता उसे लाकर मुझे खिलाते और बचा खुचा आप खाते थे। एक समय प्रातःकाल चन्द्रमा के अस्त होने पर जब पक्षिगण कोलाहल कर रहे थे, और बाल-अरुण के उदय होने से गगनमण्डल रक्तवर्ण हो रहा था और आकाशस्थित तिमिररूपी धूलि सूर्य की किरणरूपी झाड़ू से परिष्कृत हो गई, और सप्तर्षि लोग स्नानादि आह्निक कर्म के निमित्त मानसरोवर के तट पर

उतरे, उसी समय उस वृक्ष में रहने वाले पक्षी भी सब अपनी अपनी इच्छानुसार देश-देशान्तर को चले। उनके बच्चे चुपचाप खोतो में बैठे थे, और मैं भी अपने पिता के पास बैठा था, कि अचानक मृगया का शब्द सुनने में आया। कहीं सिंह गम्भीर-स्वर से गर्ज रहे हैं, कहीं घोड़े, हाथी और मृग आदि बनैले पशु वन को मथन कर रहे हैं, कहीं बाघ, रीछ और सुअर आदि भयानक जीव दौड़ रहे हैं और कहीं महिष आदि बड़े बड़े जन्तु बड़े वेग से इधर उधर घूम रहे हैं, जिनके शरीर के धक्के से वृक्ष, लतादि टूट रहे हैं। हाथियों के चिक्कार और घोड़ों के हिनहिनाने से, तथा सिंह के गर्जन और पक्षियों के कलरव से, वन कोलाहलमय हो गया और पेड़ सब भय के मारे कांपने लगे। मैं उस कोलाहल को सुन कर बहुत डरा और कांपने लगा, पिता के पंख के नीचे जा छिपा, वहीं से व्याधा लोगों की बातें सुन रहा था। वे कहते थे कि देखो वह सुअर आता है, वह हरिण दौड़ता है और वह हाथी जाता है, इत्यादि।

जब आखेट का कोलाहल बन्द हुआ और जङ्गल में सन्नाटा हो गया, मैं धीरे धीरे पिता के पंख के नीचे से निकल कर खोते के बाहर शिर निकाल कर जिधर शब्द होता था उसी ओर देखने लगा तो क्या देखता हूँ कि कृतान्त के सहोदर के समान महाविकरालरूप एक सेनापति के सङ्ग यमदूत की नाई बहुत से व्याधा चले आते हैं उनको देख कर साक्षात भूतों के मध्य में स्थित भैरव अथवा दूत सहित कालान्तक यमराज

का स्मरण होता था। मद्य की उन्मत्तता से दोनों नयन रक्तवर्ण हो रहे थे और समस्त शरीर में रुधिर लगा हुआ था और सङ्ग में बहुत से बड़े बड़े कुत्ते थे। उन्हें देखने से यह विदित होता था कि जैसे कोई भयङ्कर असुर वन-पशुओं को पकड़ पकड़ खाता चला आता है। व्याधों को देख कर मैंने मन में विचारा कि ये कैसे दुष्कर्म्मी और दुराचारी हैं, जङ्गल इनका घर है; मद्य और मांस आहार, धनुष धन, कुत्ते मित्र और बाघ, सिंह आदि हिंसक जन्तुओं के साथ वास और पशुओं की प्राणहत्या इनकी जीविका है। इनके हृदय में दया का लेश भी नहीं है और न अधर्म का कुछ भय है; और सत्कर्म तो जानते ही नहीं कि किसे कहते हैं; ये लोग सदा धर्म्मपथ को त्याग निन्दित और घृणित बने रहते हैं। मैं इस प्रकार तर्कना कर रहा था कि वे मृगया की थकावट को उतारने के लिए उसी वृक्ष के नीचे आ बैठे जिसमें मैं रहता था, और एक निकटवर्ती सरोवर से जल-मृणाल ला कर जलपान किया और फिर चले गये।

उस सेना में से एक वृद्ध को उस दिन कुछ आखेट नहीं मिला था, वह उनका साथ छोड़ उसी वृक्ष के नीचे खड़ा रहा। जब वे सब चले गये, उसने अपने लोहितवर्ण नेत्रों से एक बेर वृक्ष को नीचे से ऊपर तक देखा। उसके देखने ही से हमने के बच्चों का प्राण उड़ गया। हाय! दुष्टों को कोई कर्म्म असाध्य नहीं है। जैसे निसेनी द्वारा अटारी पर चढ़ने में किसी को क्लेश नहीं होता, उसी तरह वह [illegible] कांटों से घिरे हुए वृक्ष पर बड़ी सरलता से चढ़ गया और [illegible]

को निकाल निकाल उनका प्राण ले लेकर पृथिवी पर पटकने लगा पिता हमारे वृद्ध तो थे ही, इस दैवी आपत्ति के आने से दुःखी हुए। भय से शरीर काँपने लगा और तालू सूख गया इधर उधर देखते थे, परन्तु प्राण रक्षा का कोई उपाय देख न पड़ता था। तब हमको अपने डैने के मध्य में लेकर छाती के नीचे छिपा कर बैठे। उस समय मैंने देखा कि उनके नेत्रों से आँसू की धारा का प्रवाह निरन्तर चल रहा था। उस व्याधा ने हमारे खोते के समीपवर्ती बच्चों को मारते हुए अपने करकराल सर्प द्वारा मेरे पिता को भी पकड़ा। यद्यपि पिता ने उसको यथाशक्ति अपने टोंटों से भली भांति मारा और काटा, परन्तु उसने छोड़ा नहीं, वरन खोते से निकाल खूब मारा, और प्राणरहित कर पृथिवी पर फेंक दिया। मैं भय से व्याकुल हो पिता के पंख में छिपट गया था, इससे उसने मुझे नहीं देखा। उस वृक्ष के नीचे सूखे पत्तों का एक ढेर लगा था, मैं वहीं पर गिरा परन्तु मुझे चोट न आई।

जब तक बालक अधिक दिन का नहीं होता, स्नेह सम्बन्ध उसको नहीं सताता, पर भय आजन्म से उत्पन्न होता है, इस हेतु मुझको पिता के मरने का कुछ सोच हुआ परन्तु डर से व्याकुल होकर भागने की चेष्टा करने लगा अपने शरीर बराबर और छोटे छोटे पंखों की सहायता लिया चलता मन में यह भावना चला आता था कि [illegible] [illegible] [illegible] हुआ, और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible]

शिशावकों को एक लता में बांध जिधर वह लेना गई थी उसी ओर चल दिया।

दूर से गिरने और भय के कारण मेरा शरीर थर थर कांपता था और प्यास से कण्ठ सूखा जाता था: यह सोच कर कि अब वह व्याधा दूर चला गया होगा, मैंने सिर निकाल कर चारों ओर देखा और परम भयातुर होकर मैं धीरे धीरे चलने का यत्न करने लगा। गिरते पड़ते चलते चलते शरीर धूर से भर गया और सांस फूलने लगी: उस समय मैंने मन में सोचा कि चाहे किसी को कितना ही क्लेश हो, परन्तु वह अपने जीवन की आशा नहीं छोड़ता: मैंने अपने नेत्रों से देखा कि मेरे पिता स्वर्गलोक को सिधारे और मैं स्वयं इतने ऊँचे से विकलेन्द्रिय होकर गिरा, पर अभी तक जीने की आशा कैसी मन में बनी है। हाय! मुझसा निर्दयी कौन है, कि माता मेरे जन्म लेते ही मर गई: पिता मेरी माता के वियोग से विकल हमारे लालन-पालन में तत्पर थे और जीर्णावस्था में भी हमारे लिए इतना क्लेश सहते थे: परन्तु मैं सब भूल गया। मुझसा कृतघ्न और दूसरा नहीं: और अपने समान निर्दयी और दुराचारी भी किसी को नहीं देखता। कैसे आश्चर्य की बात है, ऐसी अवस्था में मुझको प्यास लगी। दूर से सारस और हंस का शब्द सुन कर मैंने अनुमान किया कि सरोवर दूर है, कैसे वहां पहुँचूंगा और जलपान करके अपनी पिपासारूपी अग्नि को शान्त करूँगा।

इसी सोच विचार में मध्याह्न हो गया और सूर्य अग्निमय किरणों से संसार को सन्तप्त करने लगे मानों "लोहे

की चद्दर" की भांति उष्ण हो गया और बालू में मेरा
भुनने लगा ।

यद्यपि मरने की कोई इच्छा न थी, पर उस समय के
से व्याकुल होकर वारंवार ईश्वर से यही प्रार्थना थी कि
ले ले । आंख के सामने अँधेरा छा गया, प्यास से कण्ठ सूख
और अङ्ग शिथिल हो गये । वहां से थोड़ी ही दूर पर जा
नामक महात्मा ऋषि रहते थे, उनके वीर पुत्र हारीत उसी
से सरोवर में स्नान करने जाते थे । उन का तेज ऐसा था
सूर्य्य । मस्तक पर जटा, ललाट में त्रिपुण्ड्र, कान में स्फटिक-मा
बाएँ हाथ में कमण्डलु, दाहिने में दण्ड, कन्धे पर कृष्ण मृगछा
और गले में यज्ञोपवीत सुशोभित था । उनकी शान्त मूर्त्ति
कर ऐसा जान पड़ता था जैसे शान्तिसागर श्रीपार्वतीवल्लभ महादेव
मेरी रक्षा को चले आते हैं । साधु लोगों का चित्त कृपालु
होता ही है, मेरी वह दशा देख कर उनको दया आई
उन्होंने मेरी ओर सङ्केत करके टहलू से कहा, देखो यह एक
का बच्चा मार्ग में पड़ा है, ऐसा जान पड़ता है कि इसी शाल्म
के वृक्ष पर से गिरा है, इसकी साँस फूल रही है और नेत्र ब
हो रहे हैं, जान पड़ता है कि बड़ा प्यासा है । यदि थोड़ी
तक जल न मिलेगा तो अवश्य मर जायगा; चलो हम इसी सरो
में इसको लेकर जल पिलावें; सम्भव है कि बच जाय । यह
कर मुझको मार्ग में से उठा लिया । उनके छूने ही से मेरा श
शीतल हो गया । अनन्तर इसके मुझे मानस के निकट ले जा
मेरा मुँह खोल अपनी उङ्गली से जल पिलाया । जल पीने से पिपासा

शान्त हुई। फिर मुझे स्नान करा के नलिनी-पत्र की शीतल छाया में बैठा दिया। आप भी स्नान कर सूर्य को अर्घ्यदान दे भीगा वस्त्र उतार पुनीत शुक्ल नवीन वस्त्र धारण कर, मुझको अपने साथ ले, तपोवन की ओर सिधारे। तपोवन के निकट पहुँच कर मैंने देखा कि वहाँ के वृक्ष सब कुसुमित और पल्लवित हो रहे थे और लवंग की सुगन्धि चारों ओर छा रही थी और मधुप पुष्पों पर भ्रमण कर रहे थे। अशोक, चम्पक, किंशुक, मल्लिका और मालती आदि नाना प्रकार के वृक्ष और लता के एकत्र होने और उनकी डालियों के मिल जाने से स्थान स्थान पर सुन्दर सुन्दर रमणीक गृह बन गये थे और उनमें सूर्य की किरणें प्रवेश नहीं कर सकती थीं। बड़े बड़े ऋषि लोग मन्त्र पढ़ पढ़ कर होम कर रहे थे और अग्नि की ज्वाला से वृक्षों की पत्तों मलिन हो रही थी और वायु होम के गन्ध से श्याम होकर धीरे धीरे बह रही थी। कोई मुनि-कुमार उच्च स्वर से वेद और कोई शान्तभाव से धर्मशास्त्र पढ़ रहे थे। मृगसमूह निःशङ्क चारों ओर भ्रमण कर रहे थे। ऐसे तपोवन को देख मैं बड़ा आह्लादित हुआ। भीतर बस के देखा कि रक्त पल्लव से सन्नत लोहितवर्ण अशोक-वृक्ष के नीचे एक पवित्र स्थान में बेत के आसन पर महातपस्वी जाबालि ऋषि बैठे हैं और उनके निकट और और मुनि लोग विराजमान हैं। जाबालि ऋषि बड़े बूढ़े थे और उनके बाल और रोएँ सब पक गये थे, ललाट में बलो पड़ गई थी, सिर नीचा हो गया था, पञ्जर और मस्तक की हड्डी निकल आई

थी और श्रवणसम्पुट श्वेत लोम से ढक गया था। उनकी मूर्ति देखने से जान पड़ता था कि वे करुणारस के प्रवाह, सन्तोष के आधार, शान्तिरूपी लता के मूल, मोक्षसुख के महामन्त्र, सत्यदर्शक और सत्यभाव के आश्रय हैं। उनको देख कर मेरे मन में एक संग भय और विस्मय दोनों उत्पन्न हुए और मैंने कहा कि इनका कैसा प्रभाव है। इनके प्रभाव से वन में हिंसा, द्वेष, वैर और मात्सर्य आदि का नाम भी नहीं है। हरिण के बच्चे सिंह के बच्चों के संग सिंही का दूध पीते हैं, हाथी और सिंह परस्पर प्रेम से खेल रहे हैं और सब धीर-चित्त हो कर शृगालों के संग निर्भय चर रहे हैं और सूखे वृक्ष भी कुसुमित हो रहे हैं, मानो सत्ययुग कलियुग के भय से भाग कर इसी तपोवन में आ छिपा है। वृक्षों की शाखा में मुनियों के मृगचर्म, कमण्डलु और मालाएँ लटक रही थीं और नीचे बैठने के लिए वेदी बनी थी मानो उस वन के सब वृक्ष तपस्वियों का वेष धारण कर तपस्या करते थे।

ऋषिकुमार मुझको वहीं रक्तवर्ण अशोक के नीचे रख अपने पिता के चरणकमल की वन्दना कर आसन्न हो एक आसन पर बैठे। सब ऋषिकुमारों ने मुझको देख कर बड़ा आश्चर्य माना और हारीत जी से पूछा कि हे सखे, इस शुक के बच्चे को तुमने कहाँ पाया? उन्होंने कहा कि जब मैं स्नान करने को आश्रम से गया तब इसको देखा कि घोसले से [illegible] धूप [illegible] रहा था [illegible] वह बेचारा [illegible]

था उस पर का चढ़ना कठिन समझ अपने संग लेता आया। अब चाहिए कि हम सब यत्नपूर्वक इसकी रक्षा करें। हारीत की यह बात सुन कर जाबालि ऋषि ने मेरी ओर देखा। उनकी दृष्टि पड़ते ही मैंने अपने को कृतार्थ जाना। उन्होंने परिचित की भांति बारम्बार मेरी ओर देख कर कहा कि यह अपने किये का फल भोग रहा है। महर्षि त्रिकालदर्शी थे, तपस्या के बल से उनको भूत, भविष्य और वर्त्तमान सब काल समान ही जान पड़ता था और ज्ञानदृष्टि द्वारा संपूर्ण संसार उनको करतल पदार्थ की भांति था। सब लोग उनका प्रभाव जानते थे, इसलिए किसी को अविश्वास नहीं हुआ, वरन् सब व्यग्र होकर पूछने लगे कि महाराज! इसने क्या दुष्कर्म और पाप किया है जिसका कि फल अब भोग रहा है! पूर्व जन्म में यह कौन जाति था और इसने किस प्रकार पक्षी-कुल में जन्म लिया? कृपा कर इन सब बातों का वर्णन करके हमारी उद्वेगाग्नि को शान्त कीजिए।

२८ महर्षि ने कहा कि निस्सन्देह इसकी कथा उद्वेगजनक है, परन्तु थोड़े समय में समाप्त नहीं हो सकती; अब सन्ध्या होती है, मुझको स्नान करना है, और तुम लोगों को भी देवार्चन का समय हो गया है, आहारादि संपूर्ण नित्यक्रिया समाप्त करके निश्चिन्त हो कर बैठो तो मैं इसका आद्योपान्त वर्णन करूं। ऋषि की यह बात सुन कर मुनिकुमार सब स्नान पूजा आदि कर्मों में नियुक्त हुए

२९ अब सन्ध्या समय उपस्थित हो गया मुनिकुमारों ने स्न

चन्दन से अर्घ्य दिया था वह उसके अङ्ग में लग कर
शोभा देता था जैसे लोहित-वर्ण सूर्य्य। तमारि दिनेश
किरणों ने धीरे धीरे पृथ्वी से कमलवन में और कमलव
वृक्षों के शिखर पर और वहाँ से पहाड़ों की चोटी को उ
स्वर्ण-वर्ण किया। वायुसञ्चलित पत्ररूप पाणि के द्वारा
सब पक्षियों को अपने अपने खोतों में बुलाने लगे और विह
भी कलरव करके उत्तर दिया। मुनि सब ध्यानावस्थित होकर
हाथ बाँध कर सन्ध्या-वंदन करने लगे और कामधेनु के दुहे
का शब्द चतुर्दिक सुनाई देने लगा। हरी हरी कुश अग्निहोत्र
वेदी पर बिछाई गई। तिमिरनाशक के भय से छिपा हुआ
प्रकट हुआ। सन्ध्या के क्षय होने के शोक से दुःखित
अन्धकाररूपी चोर भी, जो सूर्य्य के प्रताप से छिपे थे;
आये। पूर्व दिशा में चन्द्रमा का थोड़ा थोड़ा प्रकाश होने
उसकी शोभा ऐसी जान पड़ती थी जैसे प्रियतम के मिलने से
दिशा मुसकरा रही है। पहले कलामात्र, फिर आधा,
क्रमशः समस्त मण्डल सुधाधर का प्रकाश हुआ और अन्धकार
नाश हुआ। कुईं फूली और मन्द मन्द समीर के बहने से
आह्लादित हुए। जीव लोग आनन्दमय, कुमुद गन्धमय और तपे
प्रकाशमय हुआ।

हारीत भोजन आदि समाप्त करके मुझे ले ऋषिकुमारों
साथ पिता के सन्निकट आ पहुँचे और देखा कि वे एक बेत
आसन पर बैठे हैं और जलपाद नामक शिष्य पंखा कर रहा है
पिता के सम्मुख हाथ जोड़ कर ... ... और बात कि हे पि

! हम लोगों को इस जुए के पर्व का वृत्तान्त सुनने की बड़ी इच्छा है, यदि आप कृपा कर वर्णन करें तो हम बड़े कृतार्थ हों।

महाभारत सभापर्व

नीतिसम्बन्धी प्रश्न

वैशम्पायन जी बोले कि राजन् ! एक समय राजा युधिष्ठिर अपनी सभा में बैठे थे। उसी समय नारदजी सौम्य ऋषियों सहित उस सभा में पाण्डवों के देखने को अकस्मात् आ पहुँचे और युधिष्ठिर को प्रीतिपूर्वक जय का आशीर्वाद दिया। नारद जी को देखते ही सब पाण्डव खड़े हो गये और विनययुक्त, दण्डवत करके उनको सुन्दर आसन पर बैठा, अर्घ्य, पाद्य, मधुपर्क इत्यादि से उनकी पूजा की। नारदजी प्रसन्न हो पूछने लगे कि कहो तुम्हारे अर्थ तो सिद्ध होते हैं ? मन तो धर्म में लगा रहता है और अन्तरात्मा में ध्यान लगाने पर वह इधर उधर तो नहीं जाता। तुम्हारे पूर्व पुरुषाओं के अर्थ, धर्म व काम तीनों से युक्त आचरणों में तुम्हारी वृत्ति रहती है, अथवा उससे निवृत्त हो गये हो ? तुम्हारे अर्थ से धर्म और धर्म से अर्थ और काम और प्रीति से अर्थ और धर्म दोनों को बाधा तो नहीं पहुँचती ? तुमने अर्थ, धर्म और काम के करने के लिए काल का विभाग किया है या नहीं अर्थात् ब्राह्ममुहूर्त्त में धर्म करना दिन में अर्थ उपार्जन, और रात्रि में विश्राम करने का नियम किया है ? दूत और मन्त्रियों को उनका करना शत्रु का स्थान में [illegible] दिखाना [illegible]

मूल को शास्त्र से और अचिन्त्य को युक्तियों से और जानना इत्यादि गुणों को धर्मपूर्वक निर्वाह करते हो ? साम, दण्ड, भेद, मन्त्र, औषध और अपने शत्रु के विचार इत्यादि सात उपायों की साधना करते हो ? असावधानी, दीर्घसूत्रता, इन्द्रियों के वश में रहना, किसी को अपेक्षा चिन्तवन करना, परम धर्म रखने वाले साथ विचार करना, क्रोधी रानियों का दर्शन न करना किये हुए काम का आरम्भ न करना, अन्न को सबसे बड़ ... न करना, सब शत्रुओं पर एक साथ चढ़ाई करना, ... आलस्य यदि दीखे तो परीक्षा करते हो ? घोड़ा, हा... योद्धा, देश, कोष, अधिकारी, शत्रु, शास्त्र, व्यवहार, ... जमाखर्च, रथ आदि की गणना, राज्य का प्रबन्ध, ... के बलाबल को देखते रहते हो ? खेती का प्रबन्ध, ... उपाय, सड़कें, किले और पुल बनवाना, हाथियों को ... के कारण से ग्राम ग्राम में बँधवाना, सोना चाँदी, ... खानों पर कर बाँधना, और उजड़े हुए अथवा शून्य ... बसाना इत्यादि सब करते हो ? तुम्हारी सब प्रकृतिय... किले के रक्षक सेनापति, धर्माध्यक्ष, चमूपति, पुरो... ज्योतिषी, अमात्य, सुहृद, कोष, राष्ट्र, दुर्ग, सेना, नष्ट ... अर्थात् ऐसा तो नहीं है कि धन का लोभ देख कर तुम्ह... ने उनको अपने वश में कर लिया हो ? तुम्हारी सलाह ... विश्वासी दूत व मन्त्री प्रकाश तो नहीं करते ? तुम ... शत्रु, और उदासीन मनुष्यों तथा काल के अनुसार स...

भद को जानते हो? जो मनुष्य न तुम्हारे शत्रु हैं न मित्र, अर्थात् तुमसे और तुम्हारे शत्रु दोनों से मिले हुए हैं उनके कर्तव्य को देखते रहते हो या नहीं? और तुमने अपने आत्मा के समान शुद्ध अन्तःकरण वाले, समर्थ, बुद्धिमान, वृद्ध, कुलीन और प्रीतिमान् मनुष्यों को मन्त्री किया है या नहीं? मन्त्री ही विजय का मूल गिना जाता है और तुम्हारे राज्य को ऐसे मन्त्री जो मन्त्र को किसी से न कहें और शास्त्र में पण्डित हों, रक्षा करते हैं या नहीं? कहीं राज्य को तुम्हारे शत्रु नष्ट तो नहीं करते हैं? तुम समय पर जागते हो और अपने कार्य्य का विचार ब्राह्म मुहूर्त में करते हो या नहीं? तुम स्वयं किसी कार्य में बिना सभा की सम्मति के उपस्थित तो नहीं हो जाते? अथवा तुम्हारे गूढ़ मन्त्र तो प्रकाशित नहीं हो जाते? ऐसे कर्म्मों के शीघ्र करने में जिनमें परिश्रम थोड़ा और फल बहुत हो विघ्न तो नहीं होता है? तुम्हारे राजकाज करने वाले अविश्वासी और ऐसे तो नहीं हैं जिनको तुम न जानते हो? ऐसा तो तुम नहीं करते कि कभी किसी मनुष्य को किसी अधिकार पर कर दिया और कभी उसी को दूसरा अधिकार दे दिया? तुम्हारी खेती आदि विश्वासी और शुद्ध मनुष्यों के द्वारा होती है? तुम्हारे पुत्रों को सर्वशास्त्र और धर्म के उपदेशक आचार्य्य लोग धनुर्वेद की उत्तम शिक्षा करते हैं? राजाओं को उचित है कि सहस्र मूर्खों की अपेक्षा एक पण्डित को तुल्य समझें क्योंकि पण्डित ही सब कामों में कल्याण का करने वाला है। तुम भी ऐसा करते हो या नहीं? तुम्हारे सब किले, धन, धान्य, आयुध, जलयन्त्र और शिल्पविद्या के जानने

वाले उत्तम धनुर्धारी योधाओं से पूर्ण हैं या नहीं ? जिस राजा
एक मन्त्री भी बुद्धिमान, शूर, जितेन्द्रिय और चतुर होता है
लक्ष्मी की बहुत वृद्धि होती है; तुम्हारे मन्त्री भी ऐसे हैं
नहीं ? तुम अपने शत्रु, मन्त्री, पुरोहित, युवराज, चमूपति,
पाल, अन्तर्वेशिक, कारागृहाधिकारी, प्रदेष्टा, नगराध्यक्ष,
सभापालक, दण्डपालक, क़िले का रक्षक, दृष्टान्तपालक, अटवीपाल
इत्यादि अङ्गों एवं मन्त्री, युवराज और पुरोहित को छोड़ कर
शेष अङ्गों की ख़बर गुप्त दूतों के द्वारा रखते हो या नहीं ?
अपने शत्रुओं के नित्य उद्योगी और सावधान दूतों के बिना जाने
शत्रुओं के मन की बात को जानते हो या नहीं ? तुम्हारा पुरो
शिक्षायुक्त, अच्छे कुल में उत्पन्न, बहुत से शास्त्रों का जानने
शास्त्रचर्चा में कुशल, श्रौत, स्मार्त्त अग्नियों से युक्त, विधि
वाला, बुद्धिमान, सीधा और समय पर हुत और होम के
वस्तु का बताने वाला है या नहीं ? तुम्हारा ज्योतिषी सब ज्यो
के अङ्गों में कुशल है या नहीं ? और तुमको ग्रहों की बाधा
हाल जनाता रहता है या नहीं ? तुम उत्तम कामों में मुख्य
और मध्यम कामों में मध्यम और नीच कामों में नीच मनुष्यों
नियत करते हो या नहीं ? और श्रेष्ठ कामों के करने को तुम
छल-हीन सम्बन्धियों को नियत करते हो या नहीं ? तुम
प्रजा को कठिन दण्ड देकर दुःख तो नहीं देते हो ? और
करके राज्य करने में याचक लोग इस प्रकार से तुम्हारा अप
तो नहीं करते हैं जैसे स्त्रियाँ उस पति का अपमान करती हैं
स्वेच्छाचारी होता है ? तुम्हारा सेनापति, गम्भीर, बुद्धिमान, धै

[illegible]वा, पवित्र, कुलीन, प्रीतिमान्, और दक्ष और सेना के मुख्य मुख्य योद्धा सब युद्धों के जानने वाले, निष्कपट विजय करने वाले तुमसे प्रसन्न हैं या नहीं ? तुम अपनी सेना आदि का वेतन यथासमय देते हो या नहीं ? कहीं ऐसा तो नहीं करते कि समय बहुत बीत जावे और वह लोग अपना वेतन न पावें ? ऐसा करने से सब [illegible]कर बड़ा अनर्थ करते हैं क्योंकि उनकी जीविका और कुछ नहीं होती है। तुम्हारे मन्त्री तुमसे प्रीति रख कर समय पर युद्ध में तुम्हारे लिए अपने प्राणों के देने में उद्यत रहते हैं या नहीं ? तुम ऐसा तो नहीं करते कि शास्त्रों की आज्ञा को उल्लंघन करके अपनी इच्छा के अनुसार योद्धाओं को जो चाहो सो आज्ञा दे देते हो ? और जो मनुष्य अपने पुरुषार्थ से कोई बड़ा काम करे उसका तुम आदरपूर्वक धन से सम्मान करते हो या नहीं ? और ज्ञानी और विद्यावानों को पारितोषिक आदि देते हो या नहीं ? और जो मनुष्य तुम्हारा काम करने को दुःख पा रहे हैं अथवा तुम्हारे काम में जिनके प्राण जाते रहे हैं, उनके कुटुम्ब का पालन करते हो ? और जो शत्रु भय से, अथवा धनहीन होने से, अथवा युद्ध में हार जाने के कारण से, तुम्हारी शरण में आया है उसका पालन तुम पुत्र की नाईं करते हो ? और अपने शत्रु को व्यसनी अर्थात् स्त्री, जुआ, अहेर, मद्य, नाच, गान, वृथा फिरना, [illegible], निन्दा और दिन में सोना आदि व्यसनों में लिप्त सुन कर और अपने [illegible] अर्थात् मन्त्र, कोष और सेना [illegible] शत्रु के [illegible]
[illegible]

दुर्भिक्ष और मरण और पाँच मानुषी अर्थात् अयुक्त, चोर, [illegible]
राजवल्लभ और राजा के लोभ से प्रजा को भयभीत होना, [illegible]
व्यसनों को जान कर काल के अनुसार मांगल कृत्य करते [illegible]
करते हो या नहीं ? और सेना का वेतन आगे से देकर, शत्रु
मुख्य सेनापतियों को यथायोग्य रत्न आदि देकर अपनी ओर
रीति से फोड़ लेते हो या नहीं ? आप जितेन्द्रिय हो कर
ऐन्द्रिय शत्रु को जीतने का उपाय करते हो या नहीं ? और
तुम शत्रु के ऊपर चढ़ कर जाते हो तब साम, दाम, भेद,
इनका अच्छी तरह बर्ताव करते हो या नहीं ? राजा को च[illegible]
कि अपनी जड़ का पक्का करके दूसरे पर चढ़ाई करे और [illegible]
अच्छे प्रकार से पराक्रम करे और विजय होने पर सब की
योग्य रक्षा करे, तुम भी ऐसा करते हो या नहीं ? और तु[illegible]
सेना में आठ अङ्ग अर्थात् रथ, हाथी, घोड़ा, योद्धा, पनी, [illegible]
कारक, चार और मुख्य देशिक, और चार प्रकार का बल [illegible]
मौल, मित्र, कुल और आटविक हैं या नहीं जिससे यह सेना[illegible]
के से जाने पर शत्रुओं का नाश करे ? कोई राजा ऐसा नहीं [illegible]
जो मेरी [illegible] और [illegible] का दुर्भिक्ष के समय को
कर और समय में हुई [illegible] शत्रु को जीते, तुम्हारी भी नहीं
है या नहीं ? तुम्हारे कर्मचारी ऐसा करते देश की तरह [illegible]
देशों में भी शत्रु का [illegible] और तुम्हारे धर्म की र[illegible]
करते हैं या नहीं और तुम्हारे मन्त्र, [illegible] पञ्चमादि [illegible]
के [illegible] करते हैं या नहीं ? और तुम्हारे [illegible]
[illegible]

मनुष्य नियत हैं या नहीं जो तुम से प्रीति रखते हों, तुम्हारा
चाह चाहते हों? और तुम अपनी रक्षा महल के भीतर
र बाहर रहने वाले मनुष्यों से और उन मनुष्यों की रक्षा
पने पुत्र और मंत्रियों से और पुत्र की रक्षा मंत्री से, और
त्री को पुत्र से, करते हो या नहीं? और पान, द्यूत, क्रीड़ा
र स्त्रियों के लिए जो तुम्हारा खर्च होता है, वह तुम्हारे
ाकर लोग तो नहीं करते हैं? और तुम्हारा खर्च लाभ से आधा,
ायाई अथवा तीसरे हिस्से में अच्छे प्रकार से हो जाता है या
हीं? और तुम दरिद्रो, जातीय, गुरु, वृद्ध, व्यापारी और शिल्प
िया जानने वालों पर धन-धान्य देकर कृपा रखते हो या नहीं?
ौर आय-व्यय अर्थात् जमा-खर्च के रखने वाले गदक और
ेखक अर्थात् हिसाब करने वाले मुत्सद्दी लोग तुमको समय समय
र हिसाब समझाते रहते हैं या नहीं? चतुर और हितकारी
नुष्यों को निरपराध अपने अधिकार से अलग तो नहीं कर देते
ा? और उत्तम, मध्यम नीच पुरुषों के साथ यथायोग्य बर्ताव
रते हो या नहीं? और तुम्हारे काम करने को ऐसे मनुष्य तो
ियुक्त नहीं हैं जो लोभी, चोर और तुम से वैरभाव मानते हों?
ौर तुम्हारा देश लोभी, चोर, कुमारों अथवा तुम से पीड़ा तो
हीं पाता है? और तुम्हारे किसान दुष्ट तो नहीं हैं? तुम्हारे देश
ें तड़ाग जल-पूर्ण बड़े बड़े और यथा स्थानों पर हैं या नहीं?
तुम्हारे किसानों की आजीविका और बीज को कोई मनुष्य नष्ट
ो नहीं करता है? और तुम किसानों को अनुग्रह-धन, अर्थात्
तकावी चौथाई बढ़ाने पर देते हो या नहीं? और तुम्हारी वार्ता

अर्थात् खेती, वाणिज्य, पशुपालन, व लेन देन के व्याज का व्यौ
अच्छे मनुष्यों के द्वारा रहता है या नहीं ? क्योंकि "वार्ता"
प्रचार से बड़ी वृद्धि होती है और तुम्हारे सम्पूर्ण राज्य में
एक स्थान पर पाँच पाँच मनुष्य जो शूरवीर और बुद्धिमान
शान्ति रखने के लिए नियत हैं या नहीं ? तुमने नगर की रक्षा
लिए ग्रामों को नगर के समान, व बस्तियों को ग्रामों के समान
दिया है या नहीं ? और वहाँ के रहने वाले तुमको कर देते हैं
नहीं ? और तुम्हारे राज्य में शूरवीर लोग सेना को ले कर
देश और नगरों में भ्रमण अर्थात् दौरा करते हैं या नहीं ?
चौरादिकों को मारते हैं या नहीं ? और तुम स्त्रियों से मीठी बो
बोल कर उनकी रक्षा करते हो या नहीं ? स्त्रियों की बात
विश्वास तो नहीं करते और कहीं उनसे गुप्त बात तो नहीं करते
और ऐसा तो नहीं करते कि अपने देश में किसी विघ्न को सुन
उसका बिना उपाय किये हुये महल मे सो रहते हो ? रात्रि
दोपहर सोकर पिछले पहर में उठ कर अपने हित की वार्ता
विचार करते हो या नहीं ? और समय पर मन्त्रियों सहित बा
आकर सब मनुष्यों की फ़र्याद सुनते हो या नहीं ? और चलते बै
बैठते समय तुम्हारे चारों ओर रक्त वस्त्र पहिरे हुए और हाथ
नङ्गी तलवारें लिये हुए मनुष्य तुम्हारी रक्षा के लिए रहते हैं
नहीं ? और दण्डनीय मनुष्यों को तुम यमराज के समान दण्ड दे
हो या नहीं ? और अपने प्रिय अप्रिय और पूज्यों के साथ यथ
यथार्थ बर्ताव रखते हो या नहीं ? और शरीर के दुःख को औषधि
से और मन की बाधा को वृद्धों की सेवा से दूर करते हो

को बहुत दूर दूर से घोड़ें लाकर तुम्हारे राज्य में बेचते हैं उनसे तुम कर लेते हो या नहीं ? और तुम्हारे देश में व्यापारियों से कर उगाहने के लिए जो मनुष्य नियत हैं वह उस कर में से कुछ अपहरण तो नहीं कर लेते हैं ? और तुम धर्म और अर्थ के दिखानेवाले वृद्ध पुरुषों की बातें सुना करते हो या नहीं ? और तुम्हारे राज्य में प्रजा लोग खेती में उत्पन्न हुए अन्न और गौओं के दुग्ध तथा घृत में से भाग निकाल कर धर्म के लिए ब्राह्मणों को देते हैं या नहीं ? और शिल्प-विद्या जानने वालों को चातुर्मास में औज़ार बनवाने के लिए कुछ द्रव्य देते हो या नहीं ? और जो कोई तुम्हारा उपकार करता है उसके उपकार को मान कर तुम सत्पुरुषों में उसका सत्कार करते हो या नहीं ? और तुमने घोड़ा, हाथी और रथों का विधिपूर्वक सेवन, लक्षण और व्यवहार आचार्यों से सीखा है या नहीं ? तुम्हारे घर में धनुर्वेद सूत्र, यन्त्र-सूत्र और नगर-सूत्र का अभ्यास अच्छी तरह से होता है या नहीं ? तुम इन सब अस्त्र, ब्रह्मदण्ड और विषों को जानते हो या नहीं जिनसे शत्रुओं का नाश किया जाता है ? और तुम अपने देश की अग्नि, सर्प, रोग और राक्षसों से रक्षा करते हो या नहीं ? और अन्धे, गूंगे, लूले, अङ्गहीन और अनाथ मनुष्यों का पालन पिता के समान करते हो या नहीं ? और निद्रा आलस्य [illegible] और दीर्घसूत्रता [illegible] या नहीं ? [illegible]

[illegible]

के बड़ी नम्रता से बोले कि महाराज मैं आपके प्रश्नों के अनुसार राज्य के सब काम किया करूँगा । यह कह कर युधिष्ठिर ने वैसे ही श्रीनारदजी की शिक्षा के अनुसार किया और आसमुद्र पृथिवी को विजय किया । इसके पीछे नारदजी ने फिर कहा कि हे युधिष्ठिर जी ! जो राजा पूर्वोक्त रीति से चारों वर्णों की रक्षा करता है, वह इस संसार में बड़ा सुख भोग कर अन्त में इन्द्र का सालोक्य पाता है ।

सीयस्वयंवर

दोहा

उठे लखन निशि विगत सुनि, अरुणशिखा धुनि कान ।
गुरु के पहिले जगत-पति, जागे राम सुजान ॥

चौपाई

सकल शौच करि जाय नहाये, नित्य निबाहि गुरुहिं शिर नाये
समय जानि गुरु आयसु पाई, लेन प्रसून चले दोउ भाई
भूप बाग वर देखेउ जाई, जहँ वसन्त ऋतु रही लोभाई
लागे विटप मनोहर नाना, वर्ण वर्ण वर वेलि विताना
नवपल्लव फल सुमन सुहाये, निज सम्पति सुरतरहिं लजाये ।
चातक कोकिल कीर चकोरा, कूजत विहग नचत कल मोरा ।
मध्य बाग सर सोह सुहावा, मणि सोपान विचित्र बनावा ।
विमल सलिल सरसिज बहुरंगा, जलखग कूजत गुञ्जत भृंगा ।

दोहा

बाग तड़ाग बिलोकि प्रभु, हरषे बन्धु समेत।
परम रम्य आराम यह, जो रामहिं सुख देत॥

चौपाई

चौंदिसि चितै पूछि मालीगन, लगे लेन दल फूल मुदित मन।
तेहि अवसर सीता तहँ आई, गिरिजा पूजन जननि पठाई।
संग सखी सब सुभग सयानी, गावहिं गीत मनोहर बानी।
सर समीप गिरिजा गृह सोहा, बरनि न जाय देखि मन मोहा।
मज्जन करि सर सखी समेता, गई मुदित मन गौरि निकेता।
पूजा कीन्ह अधिक अनुरागा, निज अनुरूप सुभग बर माँगा।
एक सखी सिय संग बिहाई, गई रही देखन फुलवाई।
तेहि दोउ बन्धु बिलोकेउ जाई, प्रेम बिबस सीता पहँ आई।

दोहा

तासु दसा देखी सखिन, पुलक गात जल नैन।
कहु कारन निज हरष कर, पूछहिं सब मृदु बैन॥

चौपाई

देखन बाग कुँवर दुइ आये, बय किसोर सब भाँति सुहाये।
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

तासु वचन अति सियहिं सुहाने , दरश लागि लोचन अकुलाने
चली अग्र करि प्रिय सखि सोई , प्रीति पुरातन लखै न कोई

दोहा

सुमिरि सीय नारद वचन , उपजी प्रीति पुनीत ।
चकित विलोकति सकल दिशि , जनु शिशुमृगी सभीत ॥

चौपाई

कंकण किंकिणि नूपुर धुनि सुनि , कहत लषन सन राम हृदय गुनि
मानहु मदन दुन्दुभी दीन्हीं , मनसा विश्व विजय कहं कीन्हीं
अस कहि फिर चितये तेहि ओरा , सियमुख शशि भये नयन चकोरा
भये विलोचन चारु अचंचल , मनहु सकुचि निमि तज्यउ दृगंचल
देखि सीय शोभा सुख पावा , हृदय सराहत वचन न आवा
जनु विरंचि सब निज निपुणाई , विरचि विश्वकहं प्रगट दिखाई
सुन्दरता कहँ सुन्दर करई , छविगृह दीपशिखा जनु बरई
सब उपमा कवि रहे जुठारी , केहि पटतरिय विदेह कुमारी

दोहा

सिय शोभा हिय वरणि प्रभु , आपनि दशा विचारि ।
बोले शुचि मन अनुज सन , वचन समय अनुहारि ॥

चौपाई

तात जनक-तनया यह सोई , धनुष-यज्ञ ज्यहि कारण होई
. . गौरि सखी लै आई , करत प्रकाश फिरति फुलवाई
जासु विलोकि अलौकिक शोभा , सहज पुनीत मोर मन छोभा
सो सब कारण जान विधाता , फरकहिं सुभग अङ्ग सुनु भ्राता ।
रघुवंशिन कर सहज सुभाऊ , मन कुपथ पग धरै न काऊ ।

गई भवानी भवन बहोरी, बन्दि चरण बोली कर जोरी।
जय जय जय गिरिराजकिशोरी, जय महेश मुखचन्द्र चकोरी।
जय गजवदन षडानन माता, जगत जननि दामिनि द्युति गाता।
नहिँ तव आदि मध्य अवसाना, अमित प्रभाव वेद नहिँ जाना।
भव भव विभव पराभव कारिणि, विश्व विमोहनि स्ववश विहारिणि।

दोहा

पति देवता सुतीय महँ, मातु प्रथम तव रेख।
महिमा अमित न कहि सकहिँ, सहस शारदा शेष॥

चौपाई

सेवत तोहिँ सुलभ फल चारी, वरदायिनि त्रिपुरारि पियारी।
देवि पूजि पद कमल तुम्हारे, सुर नर मुनि सब होहिँ सुखारे।
मोर मनोरथ जानहु नीके, बसहु सदा उर पुर सब ही के।
कीन्हेंउ प्रगट न कारण तेही, अस कहि चरण गहे वैदेही।
विनय प्रेम वश भई भवानी, खसी माल मूरति मुसुकानी।
सादर सिय प्रसाद उर धरेऊ, बोली गौरि हर्ष हिय भरेऊ।
सुनु सिय सत्य असीस हमारी, पूजिहि मनकामना तुम्हारी।
नारद वचन सदा शुचि सांचा, सो बर मिलहि जाहि मन रांचा।

छन्द

मन जाहि राच्यो मिलहि सो वर सहज सुन्दर सांवरो।
करुणानिधान सुजान सील सनेह जानत रावरो।
इहि भांति गौरि असीस सुनि सिय सहित हिय हर्षित अली

सोरठा

जानि गौरि अनुकूल, सिय हिय हर्ष न जाय कहि।
मंजुल मङ्गल मूल, बाम अंग फरकन लगे॥

चौपाई

हृदय सराहत सीय लुनाई, गुरु समीप गवने दोउ भाई।
राम कहा सब कौशिक पाहीं, सरल सुभाव छुआ छल नाहीं।
सुमन पाइ मुनि पूजा कीन्हीं, पुनि असीस दोउ भाइन दीन्हीं।
सुफल मनोरथ होउ तुम्हारे, राम लखन सुनि भये सुखारे।
करि भोजन मुनिवर विज्ञानी, लगे कहन कछु कथा पुरानी।
विगत दिवस गुरु आयसु पाई, सन्ध्या करन चले दोउ भाई।
प्राची दिशि शशि उगेउ सुहावा, सियमुख सरिस देखि सुख पावा।
बहुरि विचार कीन्ह मन माहीं, सीय वदन सम हिमकर नाहीं।

दोहा

जन्म सिन्धु पुनि बन्धु विष, दिन मलीन सकलंक।
सियमुख समता पाव किमि, चन्द्र बापुरो रंक॥

चौपाई

घटै बढ़ै बिरहिनि दुखदाई, ग्रसै राहु निज सन्धिहिं पाई।
[illegible] चन्द्रमा [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

उयउ अरुण अवलोकहु ताता, पङ्कज कोक लोक सुखदाता।
बोले लखन जोरि जुग पानी, प्रभु प्रभाव सूचक मृदु बानी।

दोहा

अरुणोदय सकुचे कुमुद, उडुगण ज्योति मलीन।
तिमि तुम्हार आगमन सुनि, भये नृपति बलहीन॥

चौपाई

नृप सब नखत करैं उजियारी, टारि न सकैं चाप तम भारी।
कमल कोक मधुकर खग नाना, हरषे सकल निशा अवसाना।
ऐसेहि सब प्रभु भक्त तुम्हारे, होइहहिं टूटे धनुष सुखारे।
उयउ भानु बिन श्रम तम नाशा, दुरे नखत जग तेज प्रकाशा।
रवि निज उदय व्याज रघुराया, प्रभु प्रताप सब नृपन दिखाया।
तव भुजबल महिमा उदघाटी, प्रगटी धनु विघटन परिपाटी।
बन्धु वचन सुनि प्रभु मुसकाने, होइ शुचि सहज पुनीत नहाने।
नित्यक्रिया करि गुरु पहँ आये, चरण सरोज सुभग सिर नाये।
शतानन्द तब जनक बुलाये, कौशिक मुनि पहँ तुरत पठाये।
जनक विनय तिन आय सुनाई, हरषे बोलि लिये दोउ भाई।

दोहा

शतानन्द पद बन्दि प्रभु, बैठे गुरु पहँ जाइ।
चलहु तात मुनि कहेउ तब, पठवा जनक बुलाइ॥

[illegible]

सीयस्वयंवर [illegible]
[illegible]
[illegible]

पुनि मुनि वृन्द समेत कृपाला , देखन चले धनुष मखशाला।
रङ्ग भूमि आये दोउ भाई , अस सुधि सब पुरवासिन पाई।
चले सकल गृह काज बिसारी , बालक युवा जरठ नर नारी।
देखी जनक भीर भइ भारी , शुचि सेवक सब लिये हँकारी।
तुरत सकल लोगन पहँ जाहू , आसन उचित देहु सब काहू।

दोहा

कहि मृदु बचन विनीत तिन , बैठारे नर नारि।
उत्तम मध्यम नीच लघु , निज निज थल अनुहारि॥

चौपाई

राजकुँवर तिहि अवसर आये , मनहु मनोहरता छवि छाये।
गुण-सागर नागर वर वीरा , सुन्दर श्यामल गौर शरीरा।
राज-समाज विराजत रूरे , उडुगण महँ जनु जुग विधु पूरे।
जिनकी रही भावना जैसी , प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।
देखहिं भूप महा रणधीरा , मनहु वीर रस धरे शरीरा।
डरे कुटिल नृप प्रभुहिं निहारी , मनहु भयानक मूरति भारी।
रहे असुर छल जो नृप भेषा , तिन प्रभु प्रगट काल सम देखा।
पुरवासिन देखे दोउ भाई , नर भूषण लोचन सुखदाई।

दोहा

नारि विलोकहिं हरषि हिय , निज निज रुचि अनुरूप।
जनु सोहत शृङ्गार धरि , मूरति परम अनूप॥

चौपाई

[illegible] प्रभु विराटमय दीसा , बहु मुख कर पद लोचन सीसा।
जनक जाति अवलोकहिं कैसे , सजन सगे प्रिय लागहिं जैसे।

सहित विदेह बिलोकहिँ रानी , शिशु सम प्रीति न जाय बखानी ।
योगिन परम तत्त्व मय भासा , शान्त शुद्ध मन सहज प्रकाशा ।
हरि भक्तन देखेउ दोउ भ्राता , इष्ट देव सम सब सुख दाता ।
रामहिँ चितव भाव ज्यहि सीया , सो सनेह सुख नहिं कथनीया ।
उर अनुभवति न कहि सक सोऊ , कवन प्रकार कहै कवि कोऊ ।
यहि विधि रहा जाहि जस भाऊ , त्यहि तस देखेउ कोशलराऊ ।

दोहा

राजत राजसमाज महँ , कौशल राज किशोर ।
सुन्दर श्यामल गौर तन , विश्व विलोचन चोर ।

चौपाई

सहज मनोहर मूरति दोऊ , कोटि काम उपमा लघु सोऊ ।
शरद चन्द निन्दक मुख नीके , नीरज नयन भावते जीके ।
चितवनि चारु मार मद हरणी , भावति हृदय जाइ नहिँ बरणी ।
कल कपोल श्रुति कुण्डल लोला , चिबुक अधर सुन्दर मृदु बोला ।
कुमुद बन्धुकर निन्दक हासा , भृकुटी विकट मनोहर नासा ।
भाल विशाल तिलक झलकाहीं , कच विलोकि अलि अवलि लजाहीं ।
पीत चौतनी शिरन सुहाई , कुसुम कली बिच बीच बनाई ।
रेखा रुचिर कम्बु कल ग्रीवा , जनु त्रिभुवन सुखमा की सीवा ।

दोहा

कुञ्जर मणि कण्ठा कलित , उर तुलसी की माल ।
वृषभ कन्ध केहरि ठवनि , बलनिधि बाहु विशाल ॥

चौपाई

कटि तूणीर पीत पट बाँधे, कर शर धनुष वाम कर काँधे।
पीत यज्ञ उपवीत सुहाई, नख शिख मंजु महा छवि छाई।
देखि लोग सब भये सुखारे, इकटक लोचन टरहिँ न टारे।
हरषे जनक देखि दोउ भाई, मुनि पद कमल गहे तब जाई।
करि विनती निज कथा सुनाई, रङ्ग अवनि सब मुनिहिँ दिखाई।
जहँ जहँ जाहिं कुँवर वर दोऊ, तहँ तहँ चितव चकित सब कोऊ।
निज निज रुचि रामहिं सब देखा, कोउ न जान कछु मर्म विशेषा।
भलि रचना नृपसन मुनि कहेऊ, राजा परम मुदित सुख लहेऊ।

दोहा

सब मंचन ते मंच एक, सुन्दर विशद विशाल।
मुनि समेत दोउ बन्धु तहँ, बैठार महिपाल॥

चौपाई

प्रभुहिँ देखि सब नृप हिय हारे, जनु राकेश उदय भये तारे।
अस प्रतीति तिन के मन माहीँ, राम चाप तोरब सक नाहीं।
बिनु भंज्यहु भव धनुष विशाला, मेलिहि सीय राम उर माला।
अस विचार गवनहु घर भाई, जय प्रताप बल तेज गवाँई।
बिहँसे अपर भूप सुनि बानी, जे अविवेक अन्ध अभिमानी।
तोरेहु धनुष ब्याह अवगाहा, बिनु तोरे को कुँवरि बिवाहा।
एक बार कालहु किन होई, सियहित समर जितब हम सोई।
यह सुनि अपर भूप मुसुकाने, धर्म-शील हरिभक्त सयाने।

जब बन्दीजन जनक बुलाये, बिरदावली कहत चलि आये।
कह नृप जाइ कहहु प्रन मोरा, चले भाट हिय हरष न थोरा।

दोहा

बोले बन्दी बचन बर, सुनहु सकल महिपाल।
प्रन बिदेह कर कहहिं हम, भुजा उठाइ बिसाल॥

चौपाई

नृप भुजबल बिधु सिवधनु राहू, गरुअ कठोर बिदित सब काहू।
रावन बान महाभट भारे, देखि सरासन गवँहिं सिधारे।
सोइ पुरारि कोदण्ड कठोरा, राजसमाज आजु ज्यहि तोरा।
त्रिभुवन जय समेत बैदेही, बिनहिं बिचारि बरै हठि तेही।
सुनि प्रन सकल भूप अभिलाषे, भटमानी अतिसय मन माखे।
परिकर बाँधि उठे अकुलाई, चले इष्टदेवन सिर नाई।
तमकि ताकि तकि सिवधनु धरहीं, उठै न कोटि भाँति बल करहीं।
जिनके कछु बिचार मन माहीं, चाप समीप महीप न जाहीं।

दोहा

तमकि धरहिं धनु मूढ़ नृप, उठै न चलहिं लजाइ।
मनहु पाइ भट बाहुबल, अधिक अधिक गरुआइ॥

चौपाई

भूप सहस दस एकहि बारा, लगे उठावन टरै न टारा।
डगै न सम्भु सरासन कैसे, कामी बचन सती मन जैसे।
सब नृप भये जोग उपहासी ... संन्यासी
कीरति बिजय ...
श्रीहत भये हारि ...

जो प्रताप महिमा भगवाना, को बापुरो पिनाक पुराना।
नाथ जानि अस आयसु होऊ, कौतुक करौं बिलोकिय सोऊ।
कमल नाल इव चाप चढ़ावौं, सत योजन प्रमाण लै धावौं।

दोहा

तोरौं छत्रक दण्ड जिमि, तव प्रताप बल नाथ।
जो न करौं प्रभु पद सपथ, पुनि न धरौं धनु हाथ॥

चौपाई

लखन सकोप वचन जब बोले, डगमगानि महि दिग्गज डोले।
सकल लोग सब भूप डराने, सिय हिय हर्ष जनक सकुचाने।
गुरु रघुपति सब मुनि मन माहीं, मुदित भये पुनि पुनि पुलकाहीं।
सैनहिं रघुपति लखन निवारे, प्रेम समेत निकट बैठारे।
विश्वामित्र समय शुभ जानी, बोले अति सनेह मृदु बानी।
उठहु राम! भंजहु भव चापू, मेटहु तात! जनक परितापू।
सुनि गुरु वचन चरन सिर नावा, हर्ष विषाद न कछु उर आवा।
ठाढ़ भये उठि सहज सुभाये, ठवनि युवा मृगराज लजाये।

दोहा

उदित उदय गिरिमंच पर, रघुबर बाल पतङ्ग।
बिकसे सन्त सरोज सब, हर्षे लोचन भृङ्ग॥

चौपाई

नृपन केरि आशा निशि नाशी, वचन नखत अवली न प्रकाशी।
मानी महिप कुमुद सकुचाने, कपटी नृप उलूक लुकाने।
भये विशोक कोक मुनि देवा, बरषहिं सुमन जनावहिं सेवा।

सहजहिँ चले सकल जग स्वामी, मत्त मंजु कुञ्जर वर गामी।
चलत राम सब पुर नर नारी, पुलक पूरि तन भये सुखारी।
बन्दि पितर सुर सुकृत सँभारे, जो कछु पुण्य प्रभाव हमारे।
तौ शिवधनु मृणाल की नाईं, तोरहिं राम गणेश गुसाईं।

दोहा

रामहिं प्रेम समेत लखि, सखिन समीप बुलाइ।
सीता मातु सनेह बस, बचन कहै बिलखाइ॥

चौपाई

सखि! सब कौतुक देखनहारे, जोउ कहावत हितू हमारे।
कोउ न बुझाइ कहइ नृप पाहीं, ये बालक अस हठ भल नाहीं।
रावण बाण छुआ नहिँ चापा, हारे सकल भूप करि दापा।
सो धनु राज-कुँवर कर देहीं, बाल मराल कि मन्दर लेहीं।
भूप सयानप सकल सिरानी, सखि विधिगति कछु जाय न जानी।
बोली चतुर सखी मृदु बानी, तेजवन्त लघु गनिय न रानी।
कहँ कुम्भज कहँ सिन्धु अपारा, शोष्यहु सुयश सकल संसारा।
रविमण्डल देखत लघु लागा, उदय तासु त्रिभुवन तम भागा।

दोहा

मन्त्र परम लघु जासु बस, विधि हरि हर सुर सर्व।
महा मत्त गजराज कहँ, बस कर अंकुश खर्व॥

चौपाई

काम कुसुम धनु सायक लीन्हें, सकल भुवन अपने बस कीन्हें।
देवि! तजिय संसय अस जानी, भंजव धनुष राम सुनु रानी।
सखी बचन सुनि भइ परतीती, मिटा विषाद बढ़ी अति प्रीती।

तब रामहिँ बिलोकि बैदेही, सभय हृदय बिनवत जेहि तेही।
मनहीं मन मनाव अकुलानी, होहु प्रसन्न महेश भवानी।
करहु सुफल आपनि सेवकाई, करि हित हरहु चाप गरुआई।
गननायक बरदायक देवा, आजु लगे कीन्हों तव सेवा।
बार बार सुनि बिनती मोरी, करहु चाप गरुता अति थोरी।

दोहा

देखि देखि रघुबीर तन, सुर मनाव धरि धीर।
भरे बिलोचन प्रेम जल, पुलकावली शरीर॥

चौपाई

नीके निरखि राम की शोभा, पितुप्रन सुमिरि बहुरि मन छोभा।
अहह तात दारुन हठ ठानी, समुझत नहिँ कछु लाभ न हानी।
सचिव सभय सिख देइ न कोई, बुध समाज बड़ अनुचित होई।
कहँ धनु कुलिशहु चाहि कठोरा, कहँ श्यामल मृदु गात किशोरा।
बिधि केहि भाँति धरौं उर धीरा, सिरस सुमन किमि बेधहिँ हीरा।
सकल सभा की मति भइ भोरी, अब मोहिं शम्भुचाप गति तोरी।
निज जड़ता लोगन पर डारी, होहु हरुअ रघुपतिहिँ निहारी।
अति परिताप सीय मन माहीं, लव निमेष जुग सम चलि जाहीं।

दोहा

प्रभुहि चितै पुनि चितै महि, राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज मीन जुग, जनु बिधु मण्डल डोल॥

चौपाई

गिरा अलिनि मुख पङ्कज रोकी, प्रकट न लाज निशा अवलोकी।
लोचन जल रह लोचन कोना, जैसे परम कृपन कर सोना।

सकुची व्याकुलता बड़ि जानी, धरि धीरज प्रतीति उर आनी।
तन मन वचन मोर मन साँचा, रघुपति पदसरोज मन राँचा।
तौ भगवान सकल उर वासी, करिहहिं मोहि रघुपति की दासी।
जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू, सो तेहि मिलत न कछु संदेहू।
प्रभु तन चितय प्रेम प्रण ठाना, कृपानिधान राम सब जाना।
सियहि विलोकि तकेउ धनु कैसे, चितव गरुड़ लघु व्यालहिं जैसे।

दोहा

लखन लखेउ रघुवंशमणि, ताकेउ हर कोदण्ड।
पुलकि गात बोले वचन, चरण चापि ब्रह्मण्ड॥

चौपाई

दिशिकुञ्जरहु कमठ अहि कोला, धरहु धरणि धरि धीर न डोला।
राम चहहिं शङ्कर धनु तोरा, होहु सजग सुनि आयसु मोरा।
चाप समीप राम जब आये, नर नारिन सुर सुकृत मनाये।
सब कर संशय अरु अज्ञानू, मन्द महीपन कर अभिमानू।
भृगुपति केरि गर्व गरुआई, सुर मुनि वरन केरि कदराई।
सिय कर सोच जनक पछितावा, रानिन कर दारुण दुख दावा।
शम्भुचाप बड़ बोहित पाई, चढ़े जाइ सब संग बनाई।
राम बाहुबल सिन्धु अपारा, चहत पार नहिं कोउ कनहारा।

दोहा

राम विलोके लोग सब, चित्र लिखे से देखि।
चितई सीय कृपायतन, जानी विकल विशेषि॥

चौपाई

देखी विपुल विकल वैदेही , निमिष विहात कलप सम तेही ।
तृषित वारि विनु जो तनु त्यागा , मुये करै का सुधा तड़ागा ।
का वर्षा जब कृषी सुखाने , समय चूकि पुनि का पछिताने ।
अस जिय जानि जानकी देखी , प्रभु पुलके लखि प्रीति विशेषी ।
गुरहिं प्रनाम मनहिं मन कीन्हा , अतिलाघव उठाय धनु लीन्हा ।
दमक्यउ दामिनि जिमि जब लयऊ , पुनि धनु नभमण्डल सम भयऊ ।
लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े , काहु न लखा देखि सब ठाढ़े ।
तेहि छन मध्य राम धनु तोरा , भरेउ भुवन धुनि घोर कठोरा ।

छन्द

भरे भुवन घोर कठोर रव रवि वाजि तजि मारग चले ।
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलमले ।
सुर असुर मुनि कर कान दीन्हें सकल विकल विचारहीं ।
कोदण्ड खंड्यो राम तुलसी जयति वचन उचारहीं ।

सोरठा

शंकर चाप जहाज , सागर रघुवर बाहुबल ।
बूड़ो सकल समाज , चढ़े जे प्रथमहिं मोहवश ॥

चौपाई

प्रभु दोउ चापखण्ड महि डारे , देखि लोग सब भये सुखारे ।
कौशिक रूप पयोनिधि पावन , प्रेमवारि अवगाह सुहावन ।
राम रूप राकेश निहारी , बढ़ी वीचि पुलकावलि भारी ।
बाजे नभ गहगहे निसाना , देववधू नाचहिं करि गाना ।

बरषहिं सुमन रङ्ग बहुमाला, गावहिं किन्नर गीत रसाला।
रही भुवन भरि जय जय बानी, धनुष भङ्ग धुनि जात न जानी।
मुदित कहहिं जहँ तहँ नर नारी, भंज्यहु राम शम्भु धनु भारी।

दोहा

बन्दी मागध सूतगण, बिरद बदहिं मति धीर।
करहिं निछावर लोग सब, हय गज धन मणि चीर॥

चौपाई

झाँझ मृदंग शंख सहनाई, भेरि ढोल दुन्दुभी बजाई।
बाजहिं बहु बाजने सुहाये, जहँ तहँ युवतिन मंगल गाये।
सखिन सहित हर्षित अति रानी, सूखत धान परा जनु पानी।
जनक लहेउ सुख सोच बिहाई, पैरत थके थाह जनु पाई।
श्रीहत भये भूप धनु टूटे, जैसे दिवस दीप छवि छूटे।
सिय हिय सुख बरणिय केहि भाँती, जनु चातक पावत जल स्वाती।
रामहिं लखन बिलोकत कैसे, शशिहिं चकोर किशोरक जैसे।
सतानन्द तब आयसु दीन्हा, सीता गमन राम पहँ कीन्हा।

दोहा

संग सखी सुन्दरि चतुर, गावहिं मंगलचार।
गवनी बाल मराल गति, सुखमा अंग अपार॥

चौपाई

सखिन मध्य सिय सोहति कैसी, छबिगन मध्य महाछबि जैसी।
कर सरोज जयमाल सुहाई, बिश्व बिजय शोभा जनु छाई।
तन सकोच [illegible] न काहू।
जाइ समीप [illegible]

तुर सखी लखि कहा बुझाई , पहिरावहु जयमाल सुहाई ।
त युगल कर माल उठाई , प्रेम विवश पहिराइ न जाई ।
हित युग जनु जलज सनाला , ससिहिं सभीत देत जयमाला ।
वहिं छवि अवलोकि सहेली , सिय जयमाल राम उर मेली ।

सोरठा

रघुवर उर जयमाल , देखि देव वर्षहिं सुमन ।
सकुचे सकल भुआल , जनु विलोकि रवि कुमुद गन ॥

चौपाई

अरु व्योम बाजने बाजे , खल भये मलिन साधु सब राजे ।
किन्नर नर नाग मुनीशा , जय जय कहि सब देहिं असीसा ।
चहिं गावहिं विबुध वधूटी , बार बार कुसुमावलि छूटी ।
हँ तहँ विप्र वेद धुनि करहीं , बन्दी विरदावलि उचरहीं ।
हि पाताल नाक यश व्यापा , राम वरी सिय, भंज्यहु चापा ।
रहिं आरती पुर नर नारी , देहिं निछावरि वित्त विसारी ।
हत सीय राम की जोरी , छवि शृङ्गार मनहुँ इकठोरी ।
खी कहहिं प्रभु पद गहु सीता , करति न चरण परस अति भीता ।

दोहा

गौतम तिय गति सुरति करि , नहिं परसति पद पानि ।
मन विहँसे रघुवंशमणि , प्रीति अलौकिक जानि ॥

चौपाई

ब सिय देखि भूप अभिलाषे कूर कपूत मूढ़ मन माखे
ठि उठि पहिरि सनाह अभागे जहँ तहँ गाल बजावन लागे

तोरे धनुष काज नहिं सरई, जीवत हमहिं कुँवरि को बरई
साधु भूप बोले सुनि बानी, राजसमाजहिं लाज लजानी
बल प्रताप बीरता बड़ाई, नाक पिनाकहिं संग सिधाई
सोइ शूरता कि अब कहुँ पाई, अस बुधि तो विधि मुँह मसि लाई

दोहा

देखहु रामहि नयन भरि, तजि ईर्षा मद मोहु।
लषण रोष पावक प्रबल, जानि सलभ जनि होहु।

चौपाई

वैनतेय बलि जिमि चह कागू, जिमि शशि चहहि नाग अरिभागू
जिमि चह कुशल अकारण कोही, सुख संपदा चहहि शिवद्रोही
लोभी लोलुप कीरति चहई, अकलंकता कि कामी लहई
हरिपद विमुख परमगति चाहा, तस तुम्हार लालच नरनाहा
कोलाहल सुनि सीय सकानी, सखी लिवाइ गईं जहँ रानी
राम सुभाव चले गुरु पाहीं, सिय सनेह बरणत मन माहीं
रानिन सहित शोच बश सीया, अबधौं विधिहि कहा करणीया
भूपवचन सुनि इत उत तकहीं, लषण राम डर बोल न सकहीं

दोहा

अरुण नयन भृकुटी कुटिल, चितवत नृपन सकोप।
मनहुँ मत्त गजगण निरखि, सिंह किशोरहिं चोप॥

दोहा

साज साजि आवैं सबै, सजै विशाल बरात।
गोधूली बेला विमल चलहिं नृप अवदात॥ १॥

जे जे ज्यहि अधिकार में, सावधान सब होय।
करै जो आलस काज में, दण्डनीय है सोय ॥ २ ॥
अस निदेश नरनाथ को, सचिवन सकल सुनाय।
भरि हुलास निज वास को, गवन कियो मुनिराय ॥ ३ ॥
छाय गयो सिगरे नगर, राम विवाह उछाह।
घर घर मंगल गान तिय, लगी करन भरि चाह ॥ ४ ॥

छन्द चौबोला

कौशिल्या केकयी सुमित्रा औरहु दशरथ रानी।
पूजन लागीं रंगनाथ को ईस गणेश भवानी ॥
इष्ट देव कुल देव सबै मिल ग्राम-देव कह पूजैं।
कुशल लखहिं दूलह दुलहिन कर मन अभिलाषा पूजैं ॥ १ ॥
कारज करहिं नारि सब निज निज गावहिं मंगलगीता।
राम जानकी ब्याह गान सुर दश दिश करहिं पुनीता ॥
व्यञ्जन विविध प्रकारन के रचि जाको जैसे योगू।
ते देवन कह देहिं तीन विधि पढ़ि पढ़ि मंत्रन भोगू ॥ २ ॥
फूली फिरत राम की माता नहिं सुख उरहिं समाता।
द्वार द्वार देवन को विनवति कहि कहि मंजुल बाता ॥
गुरुजन को अभिवन्दन करती सहज स्वभाव सयानी।
दग भरि देखन दुलहिन दूलह सुन्दरी पुण्य महानी ॥ ३ ॥
महल महल मच रह्यो अवधपुर चहल पहल त्यहिं रजनी।
कोउ गावैं कोउ आवैं जावैं धामहिं धामहिं सजनी ॥
धूम धाम पुर धाम धाम महँ कालिह बरात पयाना।
आपु सजहिं औरन कहँ साजहिं पट भूषण विधि नाना । ४ ॥

दीपावली देव आलय महँ भवन बजारन माहीं।
करत बरात तयारी भारी नींद नयन महँ नाहीं॥
करहिं विनय पुरजन देवन सों सपदि होइ भिनुसारा।
चलै बरात राम ब्याहन हित आसु बजाय नगारा॥ ५॥

परी खभंरी ताहि शर्वरी करैं हरबरी लोगू।
कहैं हर घड़ी मोहि कबोंरी कब प्रभु करी संयोगू॥
राम विवाह प्रमोद पौर जन देहि सुजातिन दाना।
करहिं जनकपुर जान तयारी नारि करहिं कल गाना॥ ६

बाजि रहे घर घर बहु बाजन धरे कलश प्रति द्वारा।
नौबत भरत राजमन्दिर महँ नादहिं निझर नगारा॥
गायक गण गावहिं गुण गर्वित मंजुल राग सुहाना।
अति उत्कर्ष हर्ष बश लेते तीन ग्राम की ताना॥ ७

करहिं नर्त्तकी नर्त्तक नर्त्तन सर्त्तन करि विधि नाना।
विरदावली बदत बन्दी जन करि रघुवंश बखाना॥
कहुँ रथ चक्र होत घर घर रव नादहि मत्त मतंगा।
कहुँ हय देखन शोर मच्यो अति कोउ नहिं हीन उमंगा॥ ८

आये जे विदेह के धावन पृथक पृथक तिन काहीं।
सन्मानी रानी मुदमानी लिये कछुक तिन नाहीं॥
पृथक पृथक पुनि अवध प्रजा सब दूतन को सत्कारैं।
लेन कोउ को कछुक सम्भु नहिं अपना धर्म विचारैं॥ ९

बढ़ी उमंग अयोध्या-वासिन सब नाथ शम्भु मनावहि।
सो दिन बेग [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

युगल दन्त के चारि दन्त के भूषण कनक समारे।
चली दुरद विरद कद के मिथिलै संग हमारे॥ ३॥

पंच लच अति स्वच्छ बाजि के गच्छहिं दच्छ सवारा।
मन्मथ कृत मनु तीन लच रथ पथ पर रहहिं तयारा॥
अहलादे दश लच पयादे जाइँ नरन गिय सोई।
चलहिं विख्यात बरात संग महँ जिन लजात सुर जोहे॥ ४॥

वृषभ मरूट अरु ऊँट जूट बहु खच्चर सेचर भागे।
रतन जाल की विविध पालकी तिमि नालकी कला से॥
पुहुर विमान समान विमानहुँ महाजान मनहारी।
ताम जाम अरु तल्लर मानहुँ चले समान तमारी॥ ५॥

चलहिं धनिक सब अवध नगर के अर्ब खर्ब धन लीने।
स्वानी रतन विभूषण संयुत बड़ लघु नयन नगीने॥
साजि साजि सब साजु समाजन चलहिं अवधपुरवासी।
औरहु जाति जाति सम्बन्धी लेहु बोलि छवि रासी॥ ६॥

रघुकुल के सब राजकुमारन सुकुमारनहिं बोलाई।
लेहु बरात संग करि सादर न्योता भवन पठाई॥
देवलोक ते गन्धर्वन को अरु अपसरन बोलाई।
मही मंगलामुखिन सुदिन को दीजे प्रथम चलाई॥ ७॥

जे तिय गायक नायक सब विधि नाटक कर्म्म सुजाना।
सर्वंच अरु नृत्यकी अनेकन कल्नाटकी महाना॥
औरहु [illegible] विविध गुणी जन संगहिं करहिं पयाना।
[illegible] मग [illegible] सवहिं चलाना॥ ८॥

कवि कोविद पन्दीजन सज्जन सुहृद सखा अति प्यारे।
परजन पुरजन गुरुजन लघुजन चलैं स्वरूप सँभारे॥
देहु ससन बसन भूषन वर यथायोग्य सब काहीं।
कौनहु वस्तु हीन नहिं कोई रहै बरात सदाहीं॥ ९॥
शिविका अश्व नाग रथ वाहन वाहन-हीन न दीजै।
चलहि बजार अनेक सङ्ग महँ कौनिहु वस्तु न छीजै॥
शिविर अनेकन भाँति रँगावहु कनक रजत जरतारा।
तिनि नेपथ्य वितान विशद बहु रवि शशि सम द्युति भारा॥१०॥
राजासन अरु विविध सुखासन गुलगुल गिलिम गलीचे।
फटिक फरस इव वृहद फरस बहु सुरभित सलिलन सींचे॥
सभा साज सब सुखद सजावहु करन हेतु व्यवहारा।
भोजन भाजन चलैं विविध सब होन हेतु ज्यवनारा॥ ११॥
चारिहु कुँवरन के विवाह की सामग्री लै चलिये।
कौन समय क्यहि भाँति ईशगति जानि न जाय अतुलिये॥
जब ते चलै बरात अवध ते आवत अवध प्रयन्ता।
तब ते विमुख जाय नहिं कोऊ सन्त असन्त अनन्ता॥ १२॥

दोहा

एक यान गुरु हेतु वर, एक हमारे हेतु।
अति उत्तम सब साज-युत, आनहु द्वार निकेत॥ १॥
मार्कण्डेय मुनीश वर, कल्पान्तायुष सोय।
देहु तिन्हैं स्यन्दन विशद, मारग श्रम नहिं होय॥ २॥
कात्यायन जाबालि मुनि वामदेव मतिमान
रथ दीजै सब कहँ [illegible] [illegible] करहि पयान

रामाश्वमेध।

दोहा

विश्वामित्र वसिष्ठ सों, एक समय रघुनाथ।
पारम्भो केशव करन, अश्वमेध की गाथ॥ १॥

राम—

चामर छन्द

मैंदियो समेत तो अनेक दान मैं दियो।
राजसूय आदि दै अनेक यज्ञ मैं कियो॥
सोध त्याग पाप न हिये सों हौं महा हरौ।
एक अश्वमेध जानकी बिना करौं॥ २॥

मुद्रित समुद्र सात मुद्रा निज मुद्रित कै,
आई दिसि दिसि जीति सेना रघुनाथ की ॥१०॥

दोहा

दिसि विदिसनि अवगाहि कै, सुख श्री केशवदास।
बालमीकि के आश्रमहिं, गयो तुरङ्ग प्रकाश ॥११॥

दोधक छन्द

टहि ते मुनि बालक धाये। पूजित बाजि विशोकन आये॥
ाल को पट्ट जहाँ लव बाँच्यो। बाँधि तुरङ्गम जयरस राँच्यो ॥१२॥

श्लोक

एकवीरा च कौशल्या तस्याः पुत्रो रघूद्वहः।
तेन रामेण मुक्तोऽसौ वाजी गृह्णात्विमं बली ॥१३॥

दोधक छन्द

र चमू चहुँ ओर ते गाजी। कौनेहि रे यह बाँधिय बाजी।
लि उठे लव मैं यह बाँध्यो। यों कहि के धनुशायक साँध्यो।
रि भगाय दिये सिगरे यों। मन्मथ के शर ज्ञान घने ज्यों ॥१४॥

धीर छन्द

योधा भगे वीर शत्रुघ्न आये। कोदण्ड लीन्हे महारोष छाये॥
ठाढ़ो तहाँ एक बालै विलोक्यो। रोक्यो तहीं जोर नाराच मोक्यो ॥१५॥

शत्रुघ्न—

मन्दरी छन्द

बालक छाडि दे छाडि तुरङ्गम। तोसों कहा करौं सङ्गर संगम॥
ऊपर वीर हिये करुणा रस। वीरहि विप्र हने न कहूँ यश ॥१६

...हा तबहीं तिन छोरि लयो। शत्रुहिं आनँद चित्त भयो॥
...हे तर को तो चले जबहीं। सीता पहँ बाल गये तबहीं॥२२॥

बालक—

झूलना छन्द

सुनु मैथिली नृप एक को लव बाँधियो वर बाजि।
चतुरङ्ग सैन भगाइ के तब जीतियो वह आजि।'
उर लागि गो शर एक को भुव में गिरयो मुरझाइ।
हन बाजि लै लव लै चल्यो नृप दुन्दुभीन बजाइ॥२३॥

दोहा।

सीता गीता पुत्र की, सुनि सुनि भईं अचेत।
मनो चित्र की पुत्रिका, मन क्रम बचन समेत॥२४॥

सीता—

झूलना छन्द

रिपु हाय श्री रघुनाथ के सुत क्यों परें करतार।
पावै देवता सब काल जो लव तो मिले यदि बार॥
हरि हैं नहीं कुश हैं नहीं लव बेद कौन छुड़ाइ।
बन माँझ हर सुनो कथा कुश आइयो अकुलाइ॥२५॥

सूल समूल उखारि लियो लवणासुर पीछे तें आइ सो टेरो।
रावण को दल मारनहारी सुर अंकुश दै कुश के मद फेरो ॥२७॥

दोहा

कुश की टेर सुनी जहीं, फूल फिरे शत्रुघ्न।
दीप विलोकि पतङ्ग ज्यों, यदपि भयो बहु विघ्न ॥२८॥

मनोरमा छन्द

रघुनन्दन को अवलोकत ही कुश। उरमांझ हयो शर शुद्ध निरंकुश।
ते गिरे रथ ऊपर लागत ही शर। गिरि ऊपर ज्यों गजराज कलेवर ॥२९॥

सुन्दरी छन्द

जूझि गिरे जबहीं अरिहारन। भाजि गये तबहीं भट के गन।
काढ़ि लियो जबहीं लव को शर। कंठ लग्यो तबहीं उठि सोदर ॥३०॥

दोहा

मिले जो कुशलव कुशल सों, बाजि बाँधि तरुमूल।
रण महि ठाढ़े शोभिजै, पशुपति गणपति तूल ॥३१॥

रूपमाला छन्द

यज्ञमण्डल में हुते रघुनाथ जू तेहि काल।
चर्म अङ्ग कुरङ्ग को शुभ स्वर्ण की मँगमाल ॥
आस पास ऋषीस शोभित सूर सोदर साथ।
आइ भग्गुल लोग बरणे युद्ध की सब गाथ ॥१॥

भग्गुल—

स्वागता छन्द

बालमीकि थल बाजि गयो जू। विप्र बालकन रोकि लयो जू।
एक बाचि पट मोदक बाँध्यो। दौरि दौरि धनुशायक साध्यो ॥२॥

दोधक छन्द

लक्ष्मण को दल दीरघ देख्यो । कालहु ते अति भीम विशेष्यो ॥
दो में कहो सो कहा अब कीजै । आयुध लेहो कि घोटक दीजै ॥१०॥
लव बूझत हो तो यहै प्रभु कीजै । सो असु दै बरु अघ न दीजै ॥
लक्ष्मण को दल सिन्धु निहारो । ताकहँ बाण अगस्त्य तिहारो ॥११॥
कौन यहै घटि है अरि घेरे । नाहि न हाथ सरासन मेरे ॥
नेकु नहीं दुचितो चित कीन्हों । शूर बड़ो इषुधी धनु दीन्हों ॥१२॥
लै धनुबाण बली तब धायो । पल्लव ज्यों दल मारि उड़ायो ॥
यों दोउ सोदर सेन सँहारैं । ज्यों वन पावक पौन बिहारैं ॥१३॥
भागत हैं भट यों लव आगे । राम के नाम ते ज्यों अघ भागे ।
यूथप यूथ यों मारि भगायो । बात बड़े जनु मेघ उड़ायो ॥१४॥

सवैया

अति रोष रसे कुश केशव श्रीरघुनायक सों रण रीति रचै
त्यहि बारन बार भई बहु बारन खड्ग हनै न गनैं बिरचै
तहँ कुम्भ फटैं गजमोति कटैं ते चले बहु शोणित रोचि रचै
परिपूरण पूर पनारन ते जनु पीक कपूरन की किरचैं । १५

नाराच छन्द

भगे चय चमू चमूप छाँडि छाँडि तन-मन
भग रथी महारथी गयन्द वृन्द को गनै ।
कुशै लखै निरकुशै बिलोकि बंधु राम को ।
उठ्यो रिसाय कै बली [illegible] सो लोग [illegible] ॥१६॥

कुश—

मौक्तिकदाम छन्द

न हौं मकराक्ष न हौं इन्द्रजीत। विलोकि तुम्हें रण होहुँ न भीत॥
सदा तुम लक्ष्मण उत्तम गात। करौ जनि आपनि मातु अनाथ॥१॥

लक्ष्मण—

कहौ कुश जो कहि आवत बात। विलोकत हौं उपवीतहिं गात॥
हरे घर बाल बहिक्रम जानि। हिये करुणा उपजे अति आनि॥१८॥
विलोचन लोचन हैं लखि तोहिं। तजो हठ आनि भजौ किन मोहिं॥
हन्यो अपराध भजौ घर जाहु। हिये उपजाउ न मातहिं दाहु॥१९॥

दोधक छन्द

हौं हतिहौं कबहूँ नहि तोहीं। तू बरु बाढ़न बेधहि मोहीं॥
बालक विप्र कहा हनिये जू। लोक अलोकनि में गनिये जू॥२०॥

कुश—

हरिणी छन्द

लक्ष्मण हाथ हथियार धरौ [illegible] को न करौ॥
हौं हय को कबहूँ [illegible] करौं॥२१॥

[illegible]

छोड़ाइ चाहत ते तब ते तन। पाइ निमित्त करेउ मन पावन॥
शत्रुघ्न तज्यो तन सोदर लाजनि। पूत भये तजि पापसमाजनि ॥३१॥

दोधक छन्द

पातक कौन तजी तुम सीता। पावन होत सुने जग गीता॥
दोषविहीनहि दोष लगावे। सो प्रभु ये फल काहे न पावै॥३२॥
हमहूँ तहिँ तीरथ जाइ मरेंगे। सतसंगति दोष अशेष हरेंगे॥
बानर राक्षस ऋच्छ विहारे। गर्व चढ़े रघुवंशहि भारे॥
ता लगि यहि कै बात विचारी। हौ प्रभु संतत गर्व-प्रहारी ॥ ३३॥

चर्चरी छन्द

क्रोध कै अति भरत अंगद संग संगर को चले।
जामवन्त चले विभीषण और वीर भले भले॥
को गनै चतुरङ्ग सेनहि रोदसी नृपता भरी।
जाइ कै अवलोकियो रण में गिरे गिरि-से करी॥ ३४॥

रूपमाला छन्द

जामवन्त विलोकि तहँ रणभीम भू हनुमन्त।
शोणित की सरिता बही सुमनन्त रूप दुरन्त॥
छत्र तत्र ध्वजा पताका दीन देहनि भूप।
[illegible] परे मनो बहु [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

कंकरं कर बाहु मीन गयन्द शुण्ड भुजङ्ग ।
चीर चीर सुदेश केश शिवाल जानि सुरङ्ग ॥
बालका बहु भाँति हैं मणि माल जाल प्रकाश ।
पैरि पार भये ते द्वै मुनि बाल केशवदास ॥ ३ ॥

दोहा

नाम बरण लघु वेश लघु , कहत रीभ हनुमन्त ।
इतो बड़ो विक्रम कियो , जीते युद्ध अनन्त ॥ ४ ॥

भरत—

तारक छन्द

हनुमन्त दुरन्त नदी अब नाखौ । रघुनाथ सहोदर जी अभिलाखौ ।
तब जो तुम सिन्धुहि नाघि गये जू । अब नाघहु काहे न भीत भयेजू ॥ ५

हनुमान—

दोहा

सीता पद सन्मुख हुते , गयो सिन्धु के पार ।
विमुख भये क्यों जाहुँ तरि , सुनो भरत यहि बार ॥ ६ ॥

तारक छन्द

धनु बाण लिए मुनि बालक आये । जनु मन्मथ के युगरूप सुहाये
करिवे कहु सूरन के मद हीन । रघुनायक मानहुँ द्वय वपु कीने ॥ ७

भरत—

मुनि बालक हौ तुम यज्ञ करावो । [illegible] बाँधन धावो
अपराध क्षमौ सब आश्रय [illegible] राजै ॥ ८

दोहा

बाँध्यो पट्ट जो शीश यह, क्षत्रिय काज प्रकाश ।
रोष रचहु बिन काज तुम, हम विप्रन के दास ॥ ९ ॥

दोधक छन्द

कुश—

बालक वृद्ध कहौ तुम का को । देहनि को किधौं जीव प्रभा को ॥
है जड़ देह कहै सब कोई । जीव सो बालक वृद्ध न होई ॥१०॥
जीव जरै न मरै नहिं छीजै । ताकहँ शोक कहा करि कीजै ॥
जीवहि विप्र न क्षत्रिय जानो । केवल ब्रह्म हिये महँ आनो ॥ ११ ॥
जो तुम देहु हमैं कछु शिक्षा । तो हम देहिं तुम्हैं यह भिक्षा ॥
चित्त विचार परै सोइ कीजै । दोष कछू न हमैं अब दीजै ॥ १२ ॥

स्वागता छन्द

विप्र बालकन की सुनि बानी । क्रुद्ध सूर्यसुत भो अभिमानी ॥१३॥

सुग्रीव—

विप्र पुत्र तुम शीश सँभारौ राखि लेहि अब ताहि पुकारौ ॥१४॥

लव—

[illegible]

[illegible]
[illegible]

[illegible]

[illegible]
[illegible]

सुन्दरी छन्द

भाव विभीषण तू रण-दूषण । एक तुही कुल को कुल-भूषण ।
जूझि जुरे जे भले भय जीके । शत्रुहिं आइ मिले तुम नीके ।

दोधक छन्द

देववधू जबहीं हरि ल्यायो । क्यों तबहीं तजि ताहि न आयो ।
यों अपने जिय के डर आये । छुद्र सबै कुल छिद्र बताये ॥ १ ॥

दोहा

जेठो भैया अन्नदा, राजा पिता समान ।
ता की पत्नी तू करी, पत्नी मातु समान ॥ १९ ॥
को जानै कै बार तू, कही न ह्वै है माइ ।
सोई तैं पत्नी करी, सुन पापिन के राइ ॥ २० ॥

तोटक छन्द

सिगरे जग माँझ हँसावत है । रघुवंशिन पाप नसावन है
धिक तोकहँ तू अजहूँ जो जिये । खल जाइ हलाहल क्यों न पिये॥२१
कछु है अब तोकहँ लाज हिये । कहि कौन विचार हथ्यार लिये
अब जाइ कै रोष की आग जरो । गरु बाँधि कै सागर बूडि मरो॥२२

दोहा

कहा कहौं हौं भरत को, जानत है सब कोय ।
तो सो पापी सङ्ग है क्यों न पराजय होय ॥२३॥
बहुत युद्ध मो भरत सो देव अदेव समान ।
मोहि महारण पर गिर मार मादन बान ॥ २४ ॥

दोहा

भरतहिं भयो विलम्ब कछु , आये श्री रघुनाथ ॥
देख्यो वह संग्राम थल , जूझि परे सब साथ ॥१॥

तोटक छन्द

पुनाथहि आवत आइ गये । रण में मुनि बालक रूप रये ॥
ुट रूप सुगोलन सों रद में । प्रतिबिम्ब मनो निज दर्पन में ॥२॥

मधुतिलक छन्द

सीता समान मुख चन्द्र विलोकि राम ।
बूझ्यो कहाँ बसत हौ तुम कौन ग्राम ॥
माता पिता कवन कौन्यहि कर्म कीन ।
विद्या विनोद शिष कौन्यहि अस्त्र दीन ॥ ३ ॥

कुश—

रूपमाला छन्द

राजराज तुम्हें कहा मम वंश सों अब काम ।
बूझि लीन्हहु ईश लोगन जीति कै संग्राम ॥ ४ ॥

राम—

हौं न युद्ध करों कहे बिन विप्रवेश विलोकि ।
वेगि वीर कथा कहौ तुम आपनी रिस रोकि ॥ ५ ॥

कुश—

कन्यका मिथिलेश की हम पुत्र जाये दोइ ।
[illegible] आइ
[illegible]
[illegible]

दोधक छन्द

जानकि के सुख अच्छर आने। राम तहाँ अपने सुत जाने॥
विक्रम साहस शील विचारे। युद्ध कथा कहि आयुध डारे॥ ७॥

राम—

अङ्गद जीत इन्हें गहि ल्यावो। कै अपने बल मारि भगावो।
वेगि बुझावहु चित्त चिता को। आजु तिलोदक देहु पिता को॥
अङ्गद तो अङ्ग अङ्गनि फूले। पवन के पुत्र कह्यो अति भूले।
जाइ जुरे लव सों तरु लै कै। बात कही शतखण्डन कै कै॥८॥

लव—

अङ्गद जो तुम पै बल होतो। तो वह सूरज को सुत कोतो।
देखत ही जननी जो तिहारी। वा सँग सोवत ज्यों बरनारी॥९।
जादिन ते युवराज कहाये। विक्रम बुद्धि विवेक बढ़ाये।
जीवन पै कि मरे पहँ जैहै। कौन पितादि तिलोदक दैहै॥१०॥
अङ्गद हाथ गहे तरु जोई। जात तहाँ तिल सो कटि सोई॥
परवत पुञ्ज जिते उन मेले। फूल के तूल ले बाणन झेले॥११॥
बाणन वेधि रही सब देही। बानर ते जो भये अब सेही।
भूतल ते शर. मारि उड़ायो। खेलि को कन्दुक को फल पायो॥१२॥
सोहत है अध ऊरध ऐसे। होत बटा नट को नभ जैसे।
जान कहूँ न इतै उत पावै। गोवल चित्त दशो दिशि धावै॥१३॥
बोल घट्यो सो भयो सुर भङ्गो। है गये अङ्ग त्रिशंकु को सङ्गो।
हा रघुनायक हौं जन तेरो। रच्छहु गर्व गयो सब मेरो॥१४॥
दीन सुनी जन की जब बानी। ना करुणा लव पावन आनी।
छाँड़ि दियो गिरि भूमि परयोई। विह्वल है अति मानो मरयोई॥१५॥

विजय छन्द

भैरव से भट भूरि भिरे बल खेत खड़े करतार करे कै ।
मारे गिरे रथ भूधर भूप न टारे टरे इभ कोटि खरे कै ।
रोष सों खड्ग हने कुश केशव भूमि गिरे न टरेहूँ गरे कै ।
राम बिलोकि कहैं रस अद्भुत लावे परे नग नाग मरे कै ॥१६॥

दोधक छन्द

बानर रिच्छ जिते निशिचारी । सेन सबै एक बाण संहारी ॥
बाण बिंधे सबही जब जोये । स्यन्दन में रघुनन्दन सोये ॥१७॥

गीतिका छन्द

रथ जोर कै सब गोरा भूपट संमटे जे भले भले ।
हनुमन्त को अरु जामवन्तहि बाजि सो ग्रसि लै चले ॥
रथ जीति कै लव साथ लै करि मातु के कुश पै परे ।
सिर सूँघि कंठ लगाय आनन चूँबि गोद दुवौं धरे ॥ १८ ॥

रूपमाला छन्द

बांधि देवर को बिभूषण देखि कै हनुमन्त ।
पुत्र हौं बिधवा करी तुम कर्म कीन दुरन्त ॥
बाप को रण मारियो अरु पितृ भ्रात संहारि ।
आनियो हनुमन्त बांधिक आनियो नहिं गारि ॥ १ ॥

दोहा

[illegible]
[illegible]

दोधक छन्द

पाप कहाँ इति बापहि जैहौ। लोक चतुर्दश ठौर न पैहौ।
राज कुमार कहै नहिं कोऊ। जारज जाइ कहावहु दोऊ॥३॥

कुश—

मोकहँ दोष कहा सुनु माता। बन्ध लियो जो सुन्यो उन भ्राता।
हौं तुमहूँ लहि बार पठायो। राम पिता कब मोहि सुनायो॥४॥

दोहा

मोहि विलोकि विलोकि कै, रथ पर पौढ़े राम।
जीवत छोड्यो युद्ध में, माता करि विश्राम॥५॥

सुन्दरी छन्द

आइ गये तबहीं मुनिनायक। श्रीरघुनन्दन के गुणगायक
बात बिचारि कही सिगरी कुश। दुःख कियो मन में कलि अंकुश॥६॥

रूपवती छन्द

कीजै न विडम्बन मतन सोवै। भावी न मिटै सु कहूँ जग जोवै
तू तो पति देवन की गुरु बेटी। तेरी जग मृत्यु कहावत चेटी॥७॥

तोटक छन्द

सिगरे रथ मण्डल मध्य गये। अवलोकत ही अति भीत भये
दुहुँ बालक को अति अद्भुत विक्रम। अवलोकि भयो मुनि के मन संभ्रम॥८॥

दण्डक

शाणित सलिल नर बानर सलिलचर,
गिरि बालि सुत विष विभीषण डारे हैं।
चमर पताका बड़ी बड़वा अनलसम,
[illegible] सिन्धु [illegible] करार विचार हैं।

बाजि सुरबाजि सुरगज से अनेक गज,
भरत सबन्धु इन्दु अमृत निहारे हैं ।
सोहत सहित शेष रामचन्द्र कुश लव,
जीति के समर सिन्धु साँचेहू सुधारे हैं ॥९॥

सीता—

दोहा

मनसा वाचा कर्मणा, जो मेरे मन राम ।
तो सब सेना जी उठे, होहि घरी न विराम ॥१०॥

दोधक छन्द

जीय उठी सब सेन सुभागी । केशव सोवत ते जनु जागी ।
स्यों सुत सीतहि ले सुखकारी । राघव के मुनि पायन पारी ॥११॥

मनोरमा छन्द

सुर सुन्दर सोदर पुत्र मिले जहँ । वर्षा वर्षे सुर फूलन की वहँ ॥
बहुधादिविदुन्दुभिकेगण बाजत । दिगपालगयन्दनकेगणलाजत ॥१२॥

अङ्गद—

स्वागता छन्द

राम देव तुम गर्व प्रहारी । नित्य तुम्हरु अति बुद्धि हमारी ।
रुद्र देव [illegible] मारग लागी ॥१३॥

[illegible] छन्द

सुन्दर [illegible] सुन्दर [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

भरत लक्ष्मण शत्रुहा पुर भीर टारत जात।
चमर ढारति हैं दुहूँ दिशि पुत्र बन्धन गात॥
छत्र है कर इन्द्र के सुर शोभिजै बहु भेर।
मत्त दन्ति चढ़े पढ़ें जय शब्द देवन देव॥ १५॥

दोधक छन्द

यज्ञथली रघुनन्दन आये। धामनि धामनि होत बधाये।
श्रीमिथिलेशसुता बड भागी। स्यो सुत सासुन के पग लागी॥१६॥

दोहा

चारि पुत्र द्वै पुत्रसुत, कौशल्या तब देखि।
पायो परमानन्द मन, दिग्पालन सम लेखि॥१७॥

रूपमाला छन्द

यज्ञ पूरण कै रमापति देत दान अशेष।
हीर नीरज चीर माणिक वर्षि वर्षाविशेष॥ १८॥
अङ्गराग तड़ाग बाग फले भले बहु भाँति।
भवन भूषण भूमि भाजन भूरि वासर राति॥१९।
एक अयुत गज बाजि द्वै, तीनि सुरभि शुभ वर्ण।
एक एक विप्रहि दई, केशव सहित सुवर्ण॥२०॥
देव अदेव नृदेव अरु, जितने जीव त्रिलोक।
मन भायो पायो सबन, कीन्हें सबन अशोक॥२१॥
अपने अरु सोदरन के, पुत्र विलोकि समान।
न्यारे न्यारे दश दै, नृपति किय भगवान॥२२॥
कुश लव अपने भरत के नन्दन पुष्कर तक्ष।
लक्ष्मण के अङ्गद भये चित्रकेतु रणदक्ष॥२३॥

भुजंगप्रयात छन्द

भले पुत्र शत्रुघ्न हू दीप जाये । सदा साधु शूरे बड़े भाग पाये ॥
सदा मित्रपोषी हनै शत्रु छाती । सुबाहै बड़ो दूसरो शत्रुघाती ॥२४॥

दोहा

कुश को दई कुशावती, नगरी कौशल देश ।
लव को दई अवन्तिका, उत्तर उत्तम वेश ॥२५॥
पश्चिम पुष्कर को दई, पुष्करवति है नाम ।
तक्षशिला तक्षहिं दई, लई जीति संग्राम ॥२६॥
अङ्गद कहँ अङ्गद नगर, दीन्हीं पश्चिम ओर ।
चित्रकेतु चन्द्रावती, लीन्हीं उत्तर ओर ॥२७॥
मथुरा दई सुबाहु को, पूरन पावन गाथ ।
शत्रुघात को नृप कियो, देशन्हि को रघुनाथ ॥२८॥

तोटक छन्द

यहि भाँति से रक्षित भूमि भई । सब पुत्र भतीजन बाटि दई ॥
सब पुत्र महामनु पोषि लिये । बहु भाँतिन के उपदेश दिये ॥२९॥
[illegible] न [illegible] कूट पै न बोलई ॥
[illegible] न बोलई ॥
[illegible]
[illegible]

[illegible]

[illegible]

करौ न मंत्र मूढ़ सों न गूढ़ मंत्र खोलिये ।
सुपुत्र होहु जै हठी मठीन सों न बोलिये ॥ ३१ ॥
वृथा न पीड़िये प्रजाहि पुत्र मानि पालिये ।
असाधु साधु बूझि कै यथापराध मारिये ।
कुदेव देव नारि को न बाल वित्त लीजिये ।
विरोध विप्रवंश सों सो स्वप्नहू न कीजिये ॥ ३२ ॥

भुजङ्गप्रयात छन्द

परद्रव्य को तौ विषप्राय लेखौ । परस्त्रीन सों ज्यों गुरुस्त्रीन देखो ।
तजौ कामक्रोधौ महामोहलोभौ । तजौ गर्वको सर्वदा चित्तक्षोभौ ॥३३॥
यशी संग्रही निग्रही युद्ध योधा । करौ साधु संसर्ग जो बुद्धि बोधा ।
हितू होइ सो देइ जो धर्मशिक्षा । अधर्मीन को देहु जैवाक भिक्षा ॥३४॥
कृतघ्नी कुवादी परस्त्रीविहारी । करौ विप्रलोभी न धर्माधिकारी ॥
सदा द्रव्य संकल्पको रचिलीजै । द्विजातीनको आपही दान दीजै ॥३५॥

सवैया

तेरह मण्डल मण्डित भूतल भूपति जो क्रम ही क्रम साधै ।
कैसेहु ताकहँ शत्रु न मित्र सु केशवदास उदास न बाधै ॥
शत्रु समीप परे त्यहि मित्र से तासु परे जो उदास के जोवै ।
विग्रह सन्धिन दाननि भिन्न मिलै चहुँ ओरन तौ सुख सोवै ॥३६॥

दोहा

[illegible] श्री [illegible] कैसहू होत न बर अवदास ।
जैस [illegible] [illegible] ताकहँ कीर्ति तान ॥३७॥
यहि वि[illegible] सब विदा कर द [illegible] ।
[illegible] [illegible] समाज ।३८॥

सभाविलास ।

परवाने

कैसे निबहै निबल जन, करि सबलन सों बैर ।
जैसे बसि सागर विषै, करत मगर सों बैर ॥
अपनी पहुँचि बिचारि कै, करतब करिए दौर ।
ते ते पांव पसारिये, जेती लांबी सौर ॥
पिशुन छल्यो नर सुजनसों, करत बिश्वास न चूकि ।
जैसे दाध्यो दूध को, पीवत छाछहि फूंकि ॥
फेर न ह्वै है कपट सों, जो कीजै व्योपार ।
जैसे हांडी काठ की, चढ़ै न दूजी बार ॥
करिये सुख को होत दुख, यह कहु कौन सयान ।
वा सोने को जारिये, जासों टूटै कान ॥
भले बुरे जहँ एक से, तहाँ न बसिये जाय ।
ज्यों अन्यायपुर में बिकै, खर गुर एकै भाय ॥
अति अनीति लहिये न धन, जो प्यारो मन होय ।
पाये सोने की छुरी, पेट न मारत कोय ॥
मूरख को पोथी दई, बांचन को गुनगाथ ।
जैसे निरमल आरसी, दई अन्ध के हाथ ॥
अतिहठ मत कर हठ बढ़ै, बात न करिहै कोय ।
ज्यों ज्यों भीजै कामरी, त्यों त्यों भारी होय ॥
नायक ह्वै ऐसे [illegible] पूजै आस ।
[illegible] कांट की नास ॥

जैसा गुण दीन्हों दई, वैसो रूप निबन्ध।
ये दोऊ कहँ पाइये, सोनो और सुगन्ध॥
प्रेम निबाहन कठिन है, समझ कीजियो कोय।
भाँग भखन है सुगम पै, लहरि कठिन ही होय॥

एक वस्तु गुण होत है, भिन्न प्रकृति के भाय।
भटा एक को पित करे, करै एक को बाय॥
बिन स्वारथ कैसे सहै, कोऊ करुये बयन।
लात खाय पुचकारिये, होय दुधारू धयन॥
करै बुराई सुख चहै, कैसे पावे कोय।
रोपै पेड़ बबूल को, आम कहाँ ते होय॥
होय बुराई ते बुरो, यह कीन्हे निरधार।
खाड़ खनैगो और को, ताको कूप तयार॥
कन कन जोरे मन जुरै, खावे निबरै सोय।
बूँद बूँद सो घट भरै, टपकत बीतै होय॥
श्रमही सों सब मिलत है, बिन श्रम मिलै न काहि।
सीधी अँगुरी घी जम्यो, क्यों हूँ निकरै नाहि॥
होत न कारज मो बिना, यहै कहै सो [illegible]
जहाँ न कुक्कुट शब्द तहँ, होत न कहा [illegible]
यही बात सब ही कहैं, राजा करै सो [illegible]
ज्यों चौपर के खेल में, पासो परै सो [illegible]
पर को अवगुण देखिये, [illegible]
करै कजेरा [illegible] पै, [illegible]

पाछे कारज कीजिये, पहिले यत्न विचार।
बड़े कहत हैं बांधिये, पानी पहिले बार॥
ठीक किये बिन और की, बात साँच मति थर्प।
होत अँधेरी रैन में, परी जेवरी सर्प॥
ठौर देखि के हूजिये, कुटिल सरल गति आप।
बाहर टेढ़ो फिरत है, बांबी सूधो सांप॥
दोऊ चाहैं मिलन को, तौ मिलाप निरधार।
कबहूँ नाहि न बाजिहै, एक हाथ ते तार॥
आप अकारज आपनो, करत कुसंगति साथ।
पायँ कुल्हारा देत है, मूरख अपने हाथ॥
ताही को करिये यतन, रहिये जाकी भार।
कौन बैठि के डार पर, काटै सोई डार॥
परतछ नीके देखिये, कहु वर्णे कोउ ताहि।
कर कंकन को आरसी, को देखत है चाहि॥
आये आदर ना करै, जात रहै पछिताय।
आयो नाग न पूजिये, बांबी पूजन जाय॥
निबल सबल के पत्त ते, सबलन सौं अनखात।
देत हिमायत की गधी, ऐराकी कै लात॥
बहुत द्रव्य संचय जहाँ, चोर राज भय होय।
कांसे ऊपर बीजुली, परत कहत सब कोय॥
ओछे नर के पेट में, रहै न मोटी बात।
आध सेर के पात्र में, कैसे सेर समात॥

थिति राजा अनरण्य के पास दूत द्वारा यह बात कहला भेजी कि आकर युद्ध कर, नहीं तो जयपत्र लिख दे। राजा अनरण्य इस बात के सुनते ही अग्नि समान जल उठे और दूत से कहा कि मैं क्षत्री हूँ। जो लड़ाई में मेरा प्राण जाय तो भले जाय, पर यमराज भी आवें तो उन्हें भी मैं बिना लोहा बजाये जयपत्र लिखने का नहीं। रावण क्या है; यदि वे मेरा राज्य लेना चाहें तो मैं दान देना चाहता हूँ, क्योंकि वे ब्राह्मण मेरे पूज्य हैं; मेरा राज्य, पाट, धन, जन, यह प्राण भी उन्हीं का है जो चाहें लें मैं चूं नहीं करने का, कुछ भी मुँह खोलूँ तो खाल खिंचा लें, पर जो धमकावें तो मैं भी क्षत्री हूँ। इतना कह राजा ने दूतों को आदरपूर्वक बिदा किया और आप जा सभास्थान में बैठ गया। समाचार पाते ही मन्त्री, पुरोहित और सेनापति सभा में आ पहुँचे और अपने अपने स्थानों में यथाक्रम बैठ गये। उस समय महाराज की आँखें कुछ लाल सी हो रही थीं, भौंहें धनुष सी चढ़ी थीं, ओठ फरकते थे। यह देख और मन में अशोच्य प्रधान मन्त्री जो बड़ा बुद्धिमान और विद्वान था, हाथ जोड़ महाराज के सोहीं हुआ। उसे देख अनरण्य महाराज कुछ शांत हुए और बोले, कहिए, आपने रावण का समाचार सुना है कि नहीं? वह बोला महाराज, सुना तो है। राजा ने पूछा, फिर कहिए [illegible] करना चाहिए? उसने हाथ जोड़ विनयपूर्वक उत्तर [illegible] कि महाराज, जहाँ तक बन पड़े लड़ाई बरा जानी [illegible] रावण जो कुछ धन ले मान जाय तो अच्छी बात

की इच्छा क्या है ? इतना सुनते ही सबके सब एक बार बोल उठे, युद्ध युद्ध ! बस महाराज ! आज्ञा हो युद्ध । महाराज सुनिए।

रावण, जयपत्र लिखा माँगता है ! वाह स्वामी, हम लोग राक्षस राजा के अधीन होंगे ? अधीनता से बढ़ कर संसार में और कोई भी कठिन दुःख नहीं; तिस पर भी विधर्मी राक्षस की। महाराज, उसकी अधीनता मान लेने से हम लोगों की बड़ी दुर्दशा होगी। इह लोक परलोक दोनों बिगड़ेंगे, जीवन से मरण सहस्र गुण श्रेष्ठ है. जीवन तो वही प्रशंसनीय है जो सुखपूर्वक प्रतिष्ठा से निभे, सो अधर्मी के अधीन रह कहाँ से होगा। मरना तो एक दिन है ही, किस दिन के लिए कुल में बट्टा लगावें। राजा के हित के लिए युद्ध में मरना ही अच्छा है। जो जीवेंगे तो स्वतन्त्र रहेंगे, अपनी जन्म-भूमि बचेगी, किसी दूसरे से हाँ हीं हूँ हूँ न करना पड़ेगा; जो लड़ाई में मरेंगे तो फिर क्या कहना है, उससे बढ़ कर क्या पा सकते हैं, झट विमान पर चढ़ इन्द्रपुर जायँगे और आनन्द भोग करेंगे। अब भला कौन ऐसा होगा जो आपकी आज्ञा न मान पराधीन हो जाना चाहेगा। जो अपने घर बैठ रावण कहला भेजता तो साम दान की बात थी; वह दल लेकर हमारे नगर पर चढ़ आया है, अब साम दान का नहीं पर बल ही का काम है। महाराज ! हम लोग क्षत्रिय कहाते हैं, आपके सेवक हैं, जगत् की रक्षा के लिए ब्रह्मा ने हमें रचा है सो हम लोगों के जीते जी यह अन्यायी जो चाहता है करता है, पाप पुण्य को कुछ नहीं डरता, इसने सहस्रों ऋषियों को निर-पराध नाश किया है और सैकड़ों कुलकामिनियों का मत भङ्ग किया है। हम लोगों को इसका उत्तर धर्मराज के पास देना पड़ेगा हम

क्षत्रिय वीरों की इन बातों को सुन कर महाराज अनरण्यजी का भी जी उमग आया और बोले—मैंने आप लोगों का मत सुना। मुझे भी लड़ने ही में कल्याण देख पड़ता है, क्योंकि सच है, जो न लड़ने से अमर हो जायँ तो न लड़ें, पर जब एक दिन खाट पर निर्धन हो मरना ही है तो क्यों यश में झूँठा बट्टा लगावें।

जो मैं रावण को राज आज दिये देता हूँ तो यह मेरा अपयश बहुत दिन तक रहेगा कि अनरण्य राजा ने राज दे अपना प्राण बचाया और उन्हीं से सूर्यवंशी राजाओं का अन्त हुआ, और मेरी प्रजा रावण के कारबारियों के हाथ से दुख पायेगी तो मुझे क्या कहेगी? निस्सन्देह वह यही कहेगी कि राजाजी ने अपना प्राण और बाल बच्चे बचाने के लिए हमें और हमारे बाल बच्चों को राक्षसों के हाथ में सौंपा। माना कि सन्धि होने पर रावण हमारी प्रजा को हमारे ही अधीन रहने देगा, पर हम जब उसके अधीन रहें तो प्रजा उससे क्योंकर बाहर रह सकती है। इस कारण आप लोगों से निहोरा करता हूँ कि आज लाज आप लोगों के हाथ है। ऐसा काम करना चाहिये कि जिसमें नाम रहे। मैं तैयार होने जाता हूँ, आप लोग भी लड़ाई की तैयारी कीजिए। यह आज्ञा दे राजाजी सभा से उठ घर में गये। वहाँ जा बख्तर जिरह टोप पहिन, अस्त्र शस्त्र बाँध, इष्ट देवता को प्रणाम कर बाहर निकलने को तैयार हुए। इतने में रानी की दाहिनी आँख कुछ फड़क उठी। वह भी थे [illegible] उठीं। राजा के पास देख फिर [illegible] [illegible] राजा को [illegible] फिर इस

मन में और हरे, पर वह पड़ी मनही मन में आगा पीछा कर
रोक न सकी। पूछा, महाराज! आज किस पर यमराज रिसाया
है? आपकी आज्ञा तो सब सिरमाथे पर मानही मानते हैं,
लड़ने का क्यों काम पड़ा? राजा ने दुनकुरा के शब्द का समा-
चार कहा। रानी भी सुन चुप रही, पंचमुखी दीप मना राजा की
निरञ्जन-आरती की। उस समय भी दीप की टेम पाई और बुझी,
उसे देख रानीजी के मन में और सन्देह हुआ, मुँह का रङ्ग जाता
रहा, दुःख हो गई। मन में गुनने लगी कि न जाने भगवान् आज
क्या करने वाले हैं, सब असगुन ही होते हैं। राजाजी ने उसके
मन की बात जान ली और बोले, अयि क्षत्रियाणी! इस संसार की
सम्पत्ति, पुत्र, कलत्र यह आदि भी सब क्षणिक हैं, इनके लिए हम
क्षत्रिय लोग तनिक भी चिन्ता नहीं करते, केवल मर्यादा और
धर्म से डरते हैं। रावण ने बड़ा उपद्रव मचाया है। उससे लड़ना
हमको अवश्य है। आगे ईश्वरेच्छा। राजा अनरण्य इस प्रकार
भवन में ठाट कर रहे थे कि इतने में सेनापतियों ने सेना की
छावनी में रण-डंका बजवा दिया। सुनतेही जहाँ जो जैसा सोता
बैठा खाता पीता था वैसे ही उठ धाया। छावनी भर में पुकार पड़
गई। अब कितने हाथी तैयार करते हैं, कितने घोड़े कसते हैं,
कितने रथ जोतते हैं, कितने अस्त्र शस्त्र बाँधते हैं, कितने किसी को
पुकारते हैं कि शीघ्र तैयार हो, कोई इधर दौड़ जाता है, कोई उधर।
क्षण के क्षण में चतुरङ्गिणी सेना तैयार हो गई [illegible]
[illegible]
[illegible]

में राजा अजयपाल का वह झलमलाता भाला देख पड़ा। यह सोने का बना था। उसके अनी के आगे सीरोही तलवार का भी पानी हेच पानी न रहता था। दो दो छोटी घंटियाँ एक अनूठे प्रकार से बज रही थीं। चार घोड़े जुते थे। देखने में यह जैसा सुहावना वैसा ही डरावना भी था। उस पर राजा भी ऐसे शोभते थे जैसे सूर्य। उनके आते ही सेना के सब लोग कमल सरीखे खिल उठे। सबों ने महाराज को एक एक कर प्रणाम किया। राजा ने भी सबों का सन्मान किया। किसी से तो पूछा कि आपके अधिकार के लोग लड़ने को तैयार हैं न? किसी को देख कुछ मुसकरा भर दिया। किसी से कह दिया कि मुझे आपसे पूरा भरोसा है। महाराज ने इस प्रकार सबों के उत्साह को बढ़ाया। जिस किसी निर्लज्ज ने उस समय लड़ाई पर जाने से छुट्टी मांगी उसे मुसकरा के तुरन्त बिदा किया। चाकरी-चोर कपूत सेना भर में दसी पाँच निकले। और उसी पर ऐसे समय यह भी सुनने में आया कि वे यथार्थ में क्षत्रिय न थे। सच है क्षत्रियों से ऐसा काम कब होने को था।

जब कायर निरादर की गाँठ माथ पर ले, अस्त्र शस्त्र फेंक, खाली हाथ सेना का साथ छोड़ कपूत काफूर हुए, तो जिस मण्डली से उन्होंने मुँह काला किया था उसके प्रधानों ने तीन तीन मुट्ठियाँ धूलि उठा अपनी मण्डली के सामने आँइछ पीछे फेंकीं और उस मण्डली के वीरों ने भी "धत्तेरे कायरों की" कह धरती पर लात मारा।

इतने में प्रधान सेनापति ने ललकार कर व्यूह को

सुनते ही सब सेना पैंतरा बदल अलग अलग हो विरल हो गई। फिर सेनापति बोला "चक्रव्यूहं रचत सेना" चक्रव्यूह बन खड़ी हुई। सब के आगे कई पांतियां हाथियों की, उसके पीछे घोड़ों के दलों की, तब रथियों की, उसके पीछे पैदलों की, तब सेनापतियों की, उनके बीच बड़ा मैदान, उसमें राजा और प्रधान लोग जा रहे। सेना का वह व्यूह आश्चर्यजनक था। देखने वालों की बुद्धि दङ्ग होती थी। कुछ समझ में न आता था। जिस ओर देखो उसी ओर उसका मुँह दिखाता था। पर यथार्थ में सेना के सब लोगों का मुँह उसी ओर को था जिधर वे जाने को थे। सब हाथी, बाजी, पदाती और रथी पाँती बांध बांध कुछ विरपट खड़े थे। इतनी पाँतियों पर पाँतियाँ थीं कि क्या सामर्थ्य कि बाहर से पाँखी पर मार सके वा झाँक सकाय। पर तो भी भीतर वालों के लिए ऐसी झंझिरियाँ थीं कि सबसे पिछली पाँति वाले भी बाहरवालों को भली भाँति देख और निशाना कर सकते थे। व्यूह क्या जादू का कोट था कि जिसके ओट में प्रधान का चबोट हो बैठे लड़ाई की बेउत कर रहे थे। रघु देव को चलने की आज्ञा हुई। सेना व्यूह बनाये चली। कभी फैलती तो समुद्र सी जान पड़ती थी और जब सिमटती तो दस बीस लोगों की एक मण्डली सी बन जाती थी। जिस समय राजा जी सैन्य ले चले उस समय नाना प्रकार के बाजन बाजते थे, ध्वजा फर्रा रही थी। कड़खों की तान सुन वीर लोग प्राण को कुछ नहीं गिनते थे। हज़ारों असाकुन [illegible] वीर लोग ऐसे वीर रस में पगे थे कि आगे बढ़ने की [illegible] और कुछ भी ध्यान नहीं करते थे वे कहते थे कि —

कोटिन फारि कटारि नहीं रण खेलन रावण को समुझैहीं।
तेग सिरोहिन राक्षस की सिर काट करोरन के डरपैहीं॥
तो मर्दान कहाइहौं जो यमलोकन दुटन पन्थ सुझैहीं।
रक्ष वधू दृग वारि प्रवाह सों आपने कोध की आग बुझैहीं॥

सब यही लव लगाये थे कि कब शत्रु देख पड़े कि अपने मन की करें। थोड़ी देर में सेना नगर के बाहर रणखेत में जा पहुँची। तो क्या देखते हैं कि राक्षसों का दल मेघमण्डल सा नगर को घेरे खड़ा है। शस्त्र बिजुली से चमकते थे। धौंसे जो बाजते थे वही मेघ गर्जते थे। सैकड़ों झंडियां बकपांति सी लगाती थीं। राजाजी की सेना आ खड़ी हुई। राक्षस सब बड़े प्रसन्न हुए, जाना कि हलुआ आया। इतने में प्रधान सेनापति ने तलवार काढ़ी, कड़खैतों ने ललकारा और कड़खा गाया। क्षत्रिय वीर लोग तो इसके भूखे ही थे, राक्षसों से भिड़ पड़े। घमासान युद्ध होने लगा।

छन्द

काटै लगी रघुनाथ छांटै लगे परमाथ,
काटै लगी घर माथ कोप पूरि तीन छन।
गिरैं अंग खण्ड घिरे लगे जङ्ग मुण्ड,
फिरैं लगे संग षण्डभूत प्रेत मोद मन।
झूमै लगे गाजि गज घूमैं लगे बाजि, अस को धरै लगे।
देखि भोम लटै लगी, जूझै लगे गाजि, मजपूती पक्षि टान पन॥
जुटै लगे बान भन कटै लग भान तन,
छूटै लग बाग पन [illegible]

कोटिन फारि कटारि नहीं रण खेलन रावण को समुझैहों।
तेग सिरोहिन राक्षस की सिर काट करोरन के उरझैहों॥
वो मर्दान कहाइहों जो यमलोकन दुष्टन पन्थ सुझैहों।
रण वधू दृग वारि प्रवाह सों आपने क्रोध को आग बुझैहों॥

सब यही लव लगाये थे कि कब शत्रु देख पड़े कि अपने मन की करें। थोड़ी देर में सेना नगर के बाहर रणखेत में जा पहुँची। तो क्या देखते हैं कि राक्षसों का दल मेघमण्डल सा नगर को घेरे खड़ा है। शस्त्र बिजुली से चमकते थे। धौंसे ओ बाजते थे वही मेघ गर्जते थे। सैकड़ों झंडियाँ बकपाति सी लखाती थीं। राजाजी की सेना जा खड़ी हुई। राक्षस सब बड़े प्रसन्न हुए, जाना कि हलुआ आया। इतने में प्रधान सेनापति ने तलवार काढ़ी; कड़खैतों ने ललकारा और कड़खा गाया। क्षत्रिय वीर लोग तो इसके भूखे ही थे, राक्षसों से भिड़ पड़े। घमासान युद्ध होने लगा।

छन्द

छाटैं लगी रणनाथ छाटैं लगे परमाथ,
काटैं लगी धर माथ कोप पूरि नैन छन।
गिरैं लगे खण्ड खिर लगे जङ्ग मुण्ड,
फिरैं लगे सग चण्डभूत पत माद मन।
झूमै लगा गाजि गज [illegible] का [illegible] लगा।
दमि भाख [illegible] लगे [illegible] पनि [illegible] पल॥
[illegible] लगा याल [illegible], [illegible] वाल [illegible]
[illegible] बाघ [illegible]॥

कितने लोथों में आ लेटे और दम तोड़ दी। किसी के पैर टूट
गए, किसी के माथे फट गए, कोई घाई में मार मार पुकारता है,
उठता बैठता है, कोई कहरता है, कोई रावण को कराहता और
कहता है कि यहां हम को क्यों लाया और राजा के हाथ
मरवाया। कोई घायल हो धरती पकड़े है, उठना चाहता है
और फिर गिर पड़ता है। कोई अपना पटका फार घाव बांधता
है, कोई चिमटियों से अंग में घुसे तीरों को काढ़ता है। चारों
ओर घायल पानी पानी चिल्ला रहे हैं, लोहू बह रहा है, सियार
सियारिनियां लोथ फाड़ फाड़ खाती और कटकटाती हैं। गिद्ध
कौवों की घन पड़ी है। भर भर पेट खाने पर भी लोथ ही पर बैठे
आपस में लड़ते हैं, मांस खाने और रुधिर पीने वाले भूत प्रेत
योगिनी डाकिनी सब आ जमी हैं।

इस प्रकार राजा ने जब भयावन और घिनावन रणभूमि
कर दी तब तो रावण के प्रधान सेनापति विकराल वेष प्रहस्त,
मारीच, सुमाली आदि अनेक राक्षस राजा से आ भिड़े। राजा
एक और वे अनेक थे तो भी राजा ने मार बाणों के उनके
[illegible] अब सब
[illegible]
[illegible]
[illegible] बहुना
[illegible] राजा
[illegible] सच
[illegible] तुझ से

छन्द

चले चन्द्रबान घनबान और कुहुकबान,
चलत कमान धूम आसमान छ्वै रह्यो।
चली यमदाढ़ै बाढ़वारी तलवारैं जहाँ,
लोह आंच जेठ तरणि भानु आंच है रह्यो॥
ऐसे समय फौजैं बिचलाई देव अनरण्य,
अरि को दबायो अंग वीर रस च्वै रह्यो।
हय चले हाथी चले संग छाड़ि साथी चले,
ऐसी चलाचली में वह राजसिंह अड़ि रह्यो॥ १॥

उस समय काल का मारा जो सामने आया राजा ने उसे तुरन्त यमपुर पठाया और मन्दराचल के समान राक्षसों की सेना को मथने लगे। एक बार तो राक्षसों ने उन पर इतने अस्त्र चलाये कि उनका रथ ढक गया, पर थोड़ी ही देर में उन अस्त्रों को काट राजा ऐसे निकले कि जैसे मेघ-मण्डल को छाँट सूर्य निकलते हैं। राजाजी को इस प्रकार युद्ध करते देख उनकी सेना जिसका जी टूट गया था फिर फिरी. कहते ही हैं कि "खूँटे के बल बछरा नाचै" जब पीठ पर कोई रहता है तो मालूम पड़ता है। अनाथ का नाथ सींगे रहता है। अब क्षत्रिय सेना भी मङ्गल कर लड़ने लगी। फिर तो मारना क्या न करना। आँखें मूँदे हाथ मारने [illegible] पर चलता है उसके सामने [illegible] हो रहता है [illegible] की बाढ़ बह गई। कोई [illegible] किसका न मान लड़ा की याद [illegible]।

हारने से न डर। मैं रावण हूँ। मेरी सेना को अति अभिमान मत कर। आ मेरे सामने फिर। जिनका दोनों दांत। मुझसे अभय माँग। मैं दिग्विजय सेना के बल करने को नहीं निकला हूँ। देख मेरी भुजाओं को। इन्हीं के बल मैं सकल शत्रुदल को नाश करता हूँ। नहीं जानता कि मैं वरदान के कारण किसी के मारे का नहीं हूँ। तेरी क्या विभूति, इन्द्र तो मेरा सामना करही नहीं सकता। रावण की इन बातों को सुन राजा अनरण्य ने मन में सुन कहा कि आप ब्राह्मण मेरे पूज्य हैं। ब्राह्मणों के प्रकार आचार करें तो मैं आपका बिना मोल का दास बना हूँ। आप से क्षमा माँगने में मुझे कुछ भी लाज नहीं। आज क्या मैं सदा आप से क्षमा माँगता हूँ। आप आशीर्वादिस चाहे जियाइये। राजा का इतना वचन सुन रावण अपना रूप सँभारि अट्टहास कर हँसा। उसका अट्टहास क्या मानो वज्र गिरने का शब्द था। आस पास के सुनने वाले सब बधिर से हो गये। थोड़े मडुक चिरकने लगे। हाथी भागने लगे। वहाँ के मनुष्यों की कौन कहे, देवता लोग भी चौंक पड़े, धरती दहल उठी। इस पर भी राजा को न डरा देख रावण ने कहा कर गर्जा? तू मुझे ब्राह्मण जान मत मान। मुझे अन्दरी का धन और दुरात्माओं का रिपु रावण जान। यदि कुछ भी [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

दूसरा कौन है जिससे मैं डरूँ ! यमराज भी ललकारें तो भी रण से बीता भर न टरूँ, मरूँ तो मरूँ । तू ब्राह्मण नहीं है तो सँभल जा । इतना कह राजा ने झट तरकस से चुन एक बाण निकाला और कान तक तान, रावण का प्राण लेने को ठान, उसके कण्ठ को लक्ष किया । उस बाण से रावण का प्राण भला क्या जाने वाला था । वह तो उसके कण्ठ में लगते ही टूट गया। यहाँ बाण चलाना क्या था, रावण के क्रोध की आग में घी की धार देनी थी । भभक उठा और ऐसा गर्जा कि जैसे हज़ारों बिजुलियाँ एक बार तड़कें, और हाथों में त्रिशूल लिए उछला, उसके उछलते ही देवता जो आकाश में रथ जमाये कौतुक देख रहे थे, भभर के भागे । सब जगत् के लोग धड़क उठे, धरती काँप उठी, शेष का फण कूदने के धक्के से नव गया, दिग्गज हलचल हो गये । बड़े वेग से हहाता और चिल्लाता आकाश में जा वहाँ से राजा के रथ पर कूदा। इतने में क्या देखते हैं कि राजा का रथ चूर हो गया है। घोड़े पिस चटनी हो गये हैं। राजा जी आप धरती पर जहाँ कि टहुनियों से लोहू बह रहा है गिरे पड़े हैं, ऊर्ध्वश्वास चल रहा है । धीरे धीरे प्रणव का शब्द मुँह से निकल रहा है और मन परब्रह्म में लग रहा है। तन को छोड़ परब्रह्म में लीन होने [illegible]

हारने से न हर । मैं रावण हूँ । मेरी सेना को जीत अभिमान मत कर । आ मेरे गोड़ों गिर । तिनका दाँतों दाब । मुझसे अभय माँग । मैं दिग्विजय सेना के बल करने को नहीं निकला हूँ । देख मेरी भुजाओं को । इन्हीं के बल मैं सकल शत्रुदल के नाश करता हूँ । नहीं जानता कि मैं वरदान के कारण किसी के मान का नहीं हूँ । तेरी क्या विभूति, इन्द्र तो मेरा सामना करही नहीं सकता । रावण की इन बातों को सुन राजा अनरण्य ने मन में गुन कहा कि आप ब्राह्मण मेरे पूज्य हैं । ब्राह्मणों के प्रकार आचार करो तो मैं आपका विना मोल का दास बना हूँ । आप से क्षमा माँगने में मुझे कुछ भी लाज नहीं । आज क्या मैं सदा आप से क्षमा माँगता हूँ । आप चाहिये मारिये चाहे जिवाइये । राजा का इतना वचन सुन रावण अपना रूप सँभारि सवार कर हँसा । उसका अट्टहास क्या मानो वज्र गिरने का शब्द था । आस पास के सुनने वाले सब बधिर से हो गये । घोड़े भड़क थिरकने लगे । हाथी भागने लगे । वहाँ के मनुष्यों की कौन कहे, देवता लोग भी चौंक उठे, धरती दहल उठी । इस पर भी राजा को न डरा देख रावण ने कहा अरे राजा ! तू मुझे ब्राह्मण जान मत मान । मुझे ब्राह्मणों का यम और देवताओं का रिपु रावण जान । प्राण कुछ भी प्यारा है तो अब भी भाग [illegible] की आग में क्यों अपने का आहुति करता है [illegible] क्रोध की आग [illegible] का भागी न बनेगा [illegible] फिर

दूसरा कौन है जिससे मैं डरूँ ! यमराज भी ललकारें तो भी रद से चौआ भर न टरूँ, मरूँ तो मरूँ । तू ब्राह्मण नहीं है तो समझ जा। इतना कह राजा ने झट तरकस से चुन एक बाण निकाला और कान तक तान, रावण का प्राण लेने को ठान, उसके कण्ठ को लक्ष किया । उस बाण से रावण का प्राण भला क्या जाने वाला था। वह तो उसके कण्ठ में लगते ही टूट गया। यहाँ बाण चलाना क्या था, रावण के क्रोध की आग में घी की धार देनी थी । भभक उठा और ऐसा गर्जा कि जैसे हज़ारों बिजुलियाँ एक बार तड़कें, और हाथों में त्रिशूल लिए उछला, उसके उछलते ही देवता जो आकाश में रथ जमाये कौतुक देख रहे थे, भभर के भागे । सब जगत् के लोग घबड़ा उठे, धरती काँप उठी, शेष का फण कूदने के धक्के से नय गया, दिग्गज हलचल हो गये । बड़े वेग से दहाड़ता और चिल्लाता आकाश में जा वहाँ से राजा के रथ पर कूदा। इतने में क्या देखते हैं कि राजा का रथ चूर हो गया है। घोड़े पिस चटनी हो गये हैं। राजा जी आप धरती पर जहाँ कि टुटुनियों से लोहू बह रहा है गिर पड़े हैं, ऊर्ध्वश्वास चल रहा है [illegible] मुँह से निकल रहा है और [illegible] रहा है [illegible]

[illegible]

उनके गुणों की प्रशंसा करते और रोते थे। पर रावण अ
स्वभाव कहाँ छोड़ सकता था। उस से जो कोई अच्छा
हो तो फिर वह रावण ही काहे का। अन्त को दुष्ट अ
स्वभाव पर आ गया। मुसकरा पड़ा और बोला अरे राम
अब कह, और लड़ेगा? तेरा क्षत्रियपन कहाँ गया? क्यों हुक
करता है? उठ, और दो चार हाथ चला। मूर्ख कितना
समझाया न माना। भला त्रिभुवन में मुझसे लड़नेहारा कौ
है? मुझसा वीर कोई न हुआ न होगा। जहाँ कहीं जब क
कोई भी मुझसे लड़ेगा वह तेरे ही सरीखा मरेगा। राव
के यों गाल बजाने सुन राजा ने आँखें खोलीं। उनकी आँ
देख रावण कुछ डर सा गया, पीछे हटा। राजा ने कहा
अरे दुष्ट! जब दो लड़ते हैं तो उनमें एक जीतता और ए
हारता ही है। यह एक बात सदा से चली आई है। मैं रघुवं
में सो रहा हूँ। यही मेरा क्षत्रियपन है। आँखों देखता सा
पूछता है? रथ में से मैं भागा तो नहीं, जो हानी यों हु
इससे तू क्यों डींग मारता और घमण्ड करता है? तू मरा
हो रहा है। सूझता नहीं। इस समय भी तू मुझसे यों क
रहा है। सामने से हट; क्यों घबराता है, मेरे ही वंश में ए
लड़का जन्म लेगा जो तुझे ऐसा पिचा पिचा मारेगा जैसे गरु
साँप को मारता है। राजा के इस शाप को सुन रावण सुन्न
हो गया। पर ऊपर से हँस दिया और कहा कि तुझ बड़े न
कुछ मेरा अब लड़के [illegible] इतने में राजा [illegible] आँखे
बन्द कर लीं [illegible]

इनके मरते ही हाहाकार पड़ गया । जब यह समाचार अन्तःपुर में पहुँचा उस समय का हाल कुछ कहा नहीं जाता । मानो करुणा रस ने वहाँ जा डेरा किया । अन्तःपुर क्या दुःखों का बसेरा हो गया । महारानियाँ सुनते ही ऐसी गिरीं कि जैसे कटा रूख गिरे । घंटों तक सुध बुध न रही । इनके पास समाचार क्या आया मानों उन पर वज्र पड़ा । जितने समय वे सब बेसुध थीं उतने ही समय दुःख से बची रही थीं । चेत होते ही दुःख की आग में पड़ीं । जलहीन मीन सी तड़पने लगीं । अङ्ग के आभूषण सब कहीं गिर पड़े, चूड़ियाँ टूट चूर हो गईं, तन के कपड़ों का कुछ ठिकाना न रहा, सिन्दूर माथों के मिट गये, कण्ठों के हार टूट गये, सिर खुल गया । कोई रोती तड़पती फिर मूर्छित हो जाती, चेत आते ही अति दुःख में आ पड़ती । हे भगवान ! रानियों के उस दुःख को मैं कैसे कह सुनाऊँ या किस दुःख सा बताऊँ । वैसा दुःख मैं दूसरा कोई नहीं जानता । उसे देख दुःख भी दुःखी होता था, करुणा भी करुणा करती, पेड़ पत्थर भी रोते थे । पत्थरों के भी कलेजे पिघलते थे । कुछ काल में ललन रानी मूर्छा से जागी । अनमनी सी अचक कर उठ बैठी और दौड़ती या भूत-प्रेती सी आँखें फाड़ इधर उधर ताकने और बकने लगी । वह बोली—यह क्या है ? सब क्या करती हैं ? सब क्यों रोती हैं ? सुनते हैं कि महाराज परलोक को सिधारे, पर कभी न मानेंगी [illegible]

[illegible]

हमारी देह से कुछ काम नहीं। जिसे महाराज ने छोड़ दी ं
किस काम की। अरी दासी! अब देर करने का कुछ काम नहीं
मेरी सोहाग-पिटारी ला, मेरा शृंगार-पिटार रच कर दे।
स्वामी के साथ जाऊँगी। पिता ने उनके हाथ सौंप दिया थ
उनके बिना किसकी हो रहूँगी और रह कर भी क्या करूँगी
उनके बिना मुझे जीना मरना है और उनके साथ मरना मु
जीना है। बडी रानी की उस वाणी को सुन और सब रानियों
आँखें खुल गईं, कान खड़े हो गए, रोमटे भरभरा आए औ
देह काँप उठी। सबों को सत चढ़ आया, सबोंने रोना पीट
छोड़ दिया और शृङ्गार-पेटार लिया। शृङ्गार कर सब की स
घर से बाहर निकलीं, बूढ़े पुरोहित ब्राह्मण साथ हो लिये। ज
रानियाँ लाल कपड़े पहन, लाल सिन्दूर दिये, लाल आँखें कि
लाल फूलों की माला लिये, हाथों में लाल चुहचुहाती चुरिय
पहने, लाल सिन्धौर भी लिये चलीं। उस समय एक अचरज क
समा बँध गई। सत और पतिव्रत आप आ सदेह विराजते थे
सब देखने वालों को कठमुरी लग गई थी। रानियाँ गाती चल
जाती थीं, लोग उन पर फूल बरसाते थे।

इस प्रकार रानियाँ चलती चलती रणखेत मे पहुँचीं। वह
जाते ही राजाजी की लाश पड़ी देख सब दौड़ पड़ीं। पास
जा हाथों हाथ उठाली। किसी ने उनके माथ को जानुअ
पर रख लिया। किसीने पैरों को गोद में ले लिया। पर।
पड़ी उन सबों की आग रानी जी के चारों पर पड़ा उस घड़ी
उन पर फिर बड़ी बड़ा विपत्ति पड़ा।

की भूमि में पड़ गईं । कलेजा फटने लगा । केश खुल बिखुर गये । रोने पीटने का कुछ ठिकाना न रहा । सब जलहीन मीन सी तड़फती थीं । सौ सौ मरण-यातना सहती थीं पर मरती न थीं । कोई राजाजी के मुँह को देखती थीं और रो रो कर जी खोती थीं । कोई उनके मुँह के पास हाथ रख कर उनकी साँस देखती थीं । कोई उनका हाथ अपने हाथों में ले नाड़ी देखती थी और सब शृङ्गार छोड़ रोती और पछाड़ खाती थीं । कोई कहती थी कि हाय करम ! यह क्या हुआ ? महाराज के साथ मुझे भी राघव क्यों न मार गया ? कसाई अधमरा कर मुझे तड़फड़ाने को छोड़ गया । कोई रोती थी कि राजाजी मुझे कहते थे कि तू मेरे हृदय में बसती है, सो राजाजी तो दूर हो गये, मैं ज्यों की त्यों यहीं पड़ी बनी हूँ । मेरी एक पूरी भी न पूर हुई । हाय ! महाराज ही नामवर की लीक सो आज आज अलीक हुई । हाय ! महाराज की यह दशा हो, मैं कुटुम्ब देखूँ । हाय ! भगवान् यह क्या किया । पुण्य, दान और धर्म, सब का यही फल हुआ ? रानियों के इस प्रकार विलाप करने की प्रतिध्वनि सब ओर से आती थी । महलों सब दिशा [illegible] रानियों का इस दशा को देख, [illegible] [illegible]

जायँगी तो आप लोगों को निस्सन्देह सुख होगा, इस महा-दुःख से बच जायँगी। एक बार जल कर जन्म भर जलने से छुटकारा पावेंगी। पर महाराज की बड़ी हानि होगी। उनके घर में दिया न बरेगा। यह बात सच है कि महाराज पुण्यात्मा आप तारणतरण थे। रणक्षेत्र में शरीर त्याग किया, उनका परलोक आप बना है। किया कर्म्म की भी कुछ आवश्यकता नहीं। पर तुम लोगों के बिना महाराज के वंश का पालन-पोषण कैसे होगा? आप लोग पतिव्रता हैं। आप लोगों का मुख्य धर्म यही है कि जिसमें पति की सुख और भलाई हो। आप लोगों को अपना सुख दुःख, मरना जीना कुछ न सोचना चाहिए। मैं समझता हूँ कि आप लोगों के घर फिर चलने में अच्छा है। यह कौन कहे कि आप लोगों को जन्म भर दुःख होगा, पर महाराज के घर में दिया न बरेगा। आप लोगों का पातिव्रत धर्म्म बढ़ेगा। इस प्रकार समझा बुझा कर पुरोहित ने कई रानियों को सती होने से रोका, पर जिनके सत ने जोर किया था, निःसन्तान थीं, वे किसी के कुछ कहने सुनने पर न आई और राजाजी के साथ सती हुईं पर हुईं।

राजा अनरण्य की ५६ वीं पीढ़ी में राजा रघु के वंश में राजा दशरथ अयोध्या के स्वामी हुए, जिन्होंने अपने भुजाओं के बल से अखण्ड राज्य किया। परन्तु अपुत्र होने पर परम दुखी थे। निदान राजा ने शृङ्गी ऋषि को आचार्य बनाकर पुत्रेष्टि-यज्ञ किया। यज्ञ के समाप्त होने पर यज्ञ-पुरुष ने यज्ञचरु राजा को देकर कहा कि राजा! तू जाकर

यह चरु अपनी रानी को दे दे, तेरे अवश्य पुत्र होगा। अनन्तर दशरथ के भवन में चैत्र शुदि ९ पुनर्वसु नक्षत्र में श्री रामचन्द्र जी परब्रह्म का अवतार कौशल्या रानी से, लक्ष्मण और शत्रुघ्न सुमित्रा रानी से, श्री भरत कैकयी रानी से, उत्पन्न हुए। श्री रामचन्द्रजी ने बालकपन में मारीच और सुबाहु नाम महाबली राक्षसों को मार कर विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा की। उन्हीं कौशल्यानन्दन ने अपने अनुज लक्ष्मण सहित विश्वामित्र के साथ जनकपुर में जाकर जो महादेवजी का पिनाक धनुष किसी राजा से नहीं उठता था, जिस धनुष को देख कर रावण और बाणासुर भी सिर झुका भाग गये उसे ऊख के समान तोड़ कर परशुरामजी का गर्व भङ्ग किया। राजा जनक ने धनुष-भङ्ग को देख कर बहुत हर्षित हो अपनी कन्या जानकी का विवाह विधिपूर्वक श्रीरामचन्द्र के साथ कर दिया। राजा दशरथ अपने पुत्रों तथा पुत्र-वधुओं सहित अयोध्या में आकर धर्म राज्य करने लगे। एक दिवस राजा दशरथ ने अपने मन में विचार किया कि मनुष्य का जीवन क्षणभंगुर है। इसलिए यदि अपने जीवन ही में मैं अपने बड़े पुत्र रामचन्द्र को युवराज पदवी पर नियत करूँ तो उत्तम हो। यह सङ्कल्प कर अपने गुरु श्रीवशिष्ठ जी से निवेदन किया। वशिष्ठ जी ने शुभ मुहूर्त निश्चय कर नागरिकों को आज्ञा दी कि कल श्रीरामचन्द्रजी का राज्याभिषेक किया जायगा। परन्तु श्रीरामचन्द्रजी की सौतेली माता कैकेयी ने अपने पति राजा दशरथ से

दो बातों के पूरे करने का वर प्रथम ही माँग रक्खा था। जब रामचन्द्र को युवराज होने का तिलक मिलने लगा तब केकयी ने उन्हीं दोनों धरोहरों को माँगा। एक यह कि राजतिलक मेरे गर्भज पुत्र भरत को मिले, दूसरे रामचन्द्रजी १४ वर्ष मुनिवेश से वन में रहें।

इस बात को सुन कर राजा दशरथ बड़े व्याकुल हुए। न वचन से फिरना और न ऐसे महायोग्य बड़े पुत्र को अधिकार से रहित करना स्वीकार किया। जब कुछ बस न चला तो अचेत हो पृथ्वी पर गिर पड़े। इस दशा को देख रामचन्द्रजी ने अपनी माता की इच्छा का पूर्ण करना और पिता के वचन का प्रतिपालन करना अपना मुख्य धर्म समझ कर १४ वर्ष का वनवास हर्षपूर्वक स्वीकार किया। उनकी पत्नी सीताजी पतिव्रत धर्म को निबाहती हुई, तथा लक्ष्मण जी भ्रातृ स्नेह को दिखाते हुए श्रीरामचन्द्र के साथ वन जाने को उद्यत हो गये। निदान रामचन्द्र जी ने जानकी और लक्ष्मण को अपने साथ ले पिता की आज्ञा का पालन करते हुए वन को प्रस्थान किया। प्रथम दिवस तमसा नदी के किनारे निवास कर प्रयागराज में भरद्वाज और [illegible]ल्माकि मुनि का दर्शन करते हुए, चित्रकूट में जा कुटी [illegible] रमण करते रहे। यहां अयोध्या में जब सुमन्त लौट कर [illegible]थ और रामचन्द्र के न लौटने का समाचार राजा दशरथ को सुनाया। राजा पुत्रशोक से इस असार संसार को [illegible] छोड़ स्वर्ग को चल गये। प्रातःकाल वशिष्ठजी ने भरत को [illegible] लाने को केकय देश में दूत भेजे। भरतजी

दूतों के साथ अयोध्या में आ राजारहित पुरी को देख दुःख में मग्न होगये। यद्यपि प्रजा ने भरतजी से प्रार्थना की कि आप भी पिता की आज्ञा का पालन कर राजगद्दी को सुशोभित कीजिए, परन्तु भरत जी ने राज्य-सुख को तृणवत् त्याग रामचंद्र के मनाने को चित्रकूट प्रस्थान किया। वहाँ जाकर रामचन्द्र से लौट आने की बहुत कुछ प्रार्थना की। परन्तु रामचन्द्र ने राज-सुख की अपेक्षा पिता की आज्ञा पालन ही करना मुख्य समझा। निदान भरत जी भी मुनि-वेश धर अयोध्या में आ तपस्या करने लगे।

अनन्तर रामचन्द्रजी पञ्चवटी में पहुँचे। वहाँ रावण की भगिनी सूर्पनखा रामचन्द्र से अपना विवाह करने आई। परन्तु रामचन्द्र एक-पत्नीव्रत थे, दूसरा विवाह करना स्वीकार नहीं किया। जब वह बहुत हठयुक्त हुई, लक्ष्मण जी ने उसके नाक कान काट डाले। यह सुन कर, खर, दूषण और त्रिशिरा १४ हज़ार सेना लेकर रामचन्द्र पर चढ़ आये। परन्तु रामचन्द्र ने आधे निमिष में सबको छिन्न भिन्न कर दिया। इस समाचार को सुन कर रावण योगी का भेष धर कर जानकी को अकेली पा हर ले गया। जब मार्ग में जटायु ने रावण को रोका और कहा कि तू बड़ा कायर और पापी है जो पराई स्त्री को चोर की नाईं हर लिये जाता है लङ्कापति ने क्रोध कर [illegible] किया [illegible] मार कर उसे [illegible] और [illegible] बहुत [illegible] आकर [illegible] [illegible] जब रामचन्द्र [illegible]

दो बातों के पूरे करने का वर प्रथम ही माँग रक्खा था। जब रामचन्द्र को युवराज होने का तिलक मिलने लगा तब कैकयी ने उन्हीं दोनों धरोहरों को माँगा। एक यह कि राजतिलक मेरे गर्भज पुत्र भरत को मिले, दूसरे रामचन्द्रजी १४ वर्ष मुनिवेश से वन में रहें।

इस बात को सुन कर राजा दशरथ बड़े व्याकुल हुए। न वचन से फिरना और न ऐसे महायोग्य बड़े पुत्र को अधिकार से रहित करना स्वीकार किया। जब कुछ वश न चला तो अचेत हो पृथ्वी पर गिर पड़े। इस दशा को देख रामचन्द्रजी ने अपनी माता की इच्छा का पूर्ण करना और पिता के वचन का प्रतिपालन करना अपना मुख्य धर्म समझ कर १४ वर्ष का वनवास हर्षपूर्वक स्वीकार किया। उनकी पत्नी सीताजी पतिव्रत धर्म को निबाहती हुई, तथा लक्ष्मण भी भ्रातृ स्नेह को दिखलाते हुए श्रीरामचन्द्र के साथ वन जाने को उद्यत हो गये। निदान रामचन्द्र जी ने जानकी और लक्ष्मण को अपने साथ ले [illegible]

घेर लिया और सुग्रीव, हनुमान्, अङ्गद, नल, नील, वा जाम्बवान आदिक सेनापतियों को साथ लेकर राक्षसों से घोर युद्ध करके उन्हें मार डाला। निदान जब संग्राम में रावण का अनुज कुम्भकर्ण तथा पुत्र मेघनाद मारा गया तब उसने आप चढ़ाई करके रामचन्द्र से युद्ध किया। पुनः रामचन्द्र जी ने अग्निबाण उसके हृदय में मार कर उसे मुक्ति-पद दिया। जब विभीषण रामचन्द्र की आज्ञानुसार रावण का दाह-कर्म्म कर चुका तब रघुनाथ जी ने विभीषण को राजसिंहासन पर बैठाया। अनन्तर रघुनाथ जी ने सीताजी के बुलाने के हेतु हनुमान् को भेजा। वह सीताजी को जड़ाऊ सुखपाल पर बैठा कर रामचन्द्रजी के पास ले चला। उस समय सब लोगों को यह इच्छा भई कि यदि हम लोग जानकीजी का दर्शन करके अपने नेत्रों को सुफल करते तो अच्छा होता। अन्तर्यामी रघुनाथ जी ने विभीषण को आज्ञा दी कि जानकीजी से कहो कि पैदल आवे। यह वचन सुनते ही जानकी जी सुखपाल से उतर कर रघुनाथ जी के पास आईं। रामचन्द्रजी जानकी को लेकर सब सेना सहित पुष्पक विमान पर चढ़ कर लङ्का से चले। जब तीसरे दिवस प्रयागराज पहुँचे, तब वहाँ से हनुमानजी को यह कह कर भेजा कि तुम अयोध्यापुरी मे पहले जाकर हमारे आने का समाचार भरत जी को दो। अब केवल एक दिन अवधि का रह गया है, जो मैं अवधि पर नहीं पहुँचूंगा तो भरतजी अपना प्राण त्याग कर देंगे। यह वचन सुनते ही हनुमान जी ने अयोध्या में जाकर रघुनाथजी का आगमन भरत जी से कह दिया। यह

हरिण बना था, मार कर अपने स्थान पर आये और जानकीजी को आश्रम में नहीं देखा, तब नर देह धारण करने से अति विलाप करते हुए दोनों भाई सीताजी को खोजने चले। जब मार्ग में जटायु से सुना कि लङ्कापति रावण जानकी को हर ले गया है, तब रघुनाथ जी ने गृद्ध को परमभक्त जान कर उसका संस्कार अपने हाथ से किया।

फिर आगे जा कबन्ध राक्षस को मारा। उसके मुख से सुग्रीव वानर का समाचार सुन कर किष्किन्धा में पम्पासर के निकट जानकी को ढूँढने लगे। सुग्रीव भी राज्य और स्त्री के छिन जाने से बड़ा दुःखी था। उसने आकर रामचन्द्र से मित्रता की। रघुराज रामचन्द्र ने बालि वानर को पापी जान उसे मार किष्किन्धा का राज्य सुग्रीव को दे दिया। उस की आज्ञा अनुसार करोड़ों वानर और भालू सीताजी के ढूँढने को चारों दिशाओं में गये। हनुमान जी ने लङ्का में जाकर रावण की चौथाई सेना को नाश कर डाला और लङ्कापुरी को भस्म कर दिया और लौट कर जानकी जी के कुशल का समाचार श्रीरामचन्द्र जी को सुनाया। तब राम-चन्द्रजी ने बड़ी भारी सेना इकट्ठी कर लङ्का पर चढ़ाई की। समुद्र के किनारे पहुँच कर उसमें नल व नील से सेतु बँधवाया। जब रावण ने अपने भाई विभीषण का निरादर किया तब विभीषण ने श्रीरामचन्द्रजी के पास आकर शरण ली। रामचन्द्र ने उसी स्थान पर लङ्का के राज्य का तिलक विभीषण को दिया और उसी मार्ग से लङ्का में पहुँच कर उसे

घेर लिया और सुग्रीव, हनुमान, अङ्गद, नल, नील, वा जाम्बवान आदिक सेनापतियों को साथ लेकर राक्षसों से घोर युद्ध करके उन्हें मार डाला। निदान जब संग्राम में रावण का अनुज कुम्भकर्ण तथा पुत्र मेघनाद मारा गया तब उसने आप चढ़ाई करके रामचन्द्र से युद्ध किया। पुनः रामचन्द्र जी ने अग्निबाण उसके हृदय में मार कर उसे मुक्ति-पद दिया। जब विभीषण रामचन्द्र की आज्ञानुसार रावण का दाह-कर्म्म कर चुका तब रघुनाथ जी ने विभीषण को राजसिंहासन पर बैठाया। अनन्तर रघुनाथ जी ने सीताजी के बुलाने के हेतु हनुमान को भेजा। वह सीताजी को उड़ाऊ सुखपाल पर बैठा कर रामचन्द्रजी के पास ले चला। उस समय सब लोगों की यह इच्छा भई कि यदि हम लोग जानकीजी का दर्शन करके अपने नेत्रों को सुफल करते तो अच्छा होता। अन्तर्यामी रघुनाथ जी ने विभीषण को आज्ञा दी कि जानकीजी से कहो कि पैदल आवें। यह वचन सुनते ही जानकी जी सुखपाल से उतर कर रघुनाथ जी के पास आईं। रामचन्द्रजी जानकी को लेकर सब सेना सहित पुष्पक विमान पर चढ़ कर लङ्का से चले। जब तीसरे दिवस प्रयागराज पहुँचे, तब वहाँ से हनुमानजी को यह कह कर भेजा कि तुम अयोध्यापुरी में पहले जाकर हमारे आने का समाचार भरत जी को दो। अब केवल एक दिन अवधि का रह गया है, जो मैं अवधि पर नहीं पहुँचूँगा तो भरतजी अपना प्राण त्याग कर देंगे। यह वचन सुनते ही हनुमान जी ने अयोध्या

समाचार सुन कर भरतजी को बड़ा हर्ष हुआ और हनुमानजी को
आशीर्वाद देकर वशिष्ठ और पुरवासियों सहित रामचन्द्र
आगे से लेने गये। रघुनाथजी पहले श्रीगुरु वशिष्ठजी के च-
कमलों पर गिरे; अनन्तर उठ कर भरत और शत्रुघ्न को गले
से लगाया। वहां से अयोध्यावासियों और अपने साथियों
अनेक वाहनों पर चढ़ा कर अयोध्यापुरी में पहुँचे। रामचन्द्र
और लक्ष्मण जी ने सीता समेत राजमन्दिर में जाकर माता
को दण्ड प्रणाम किया। पुनः वशिष्ठ जी की आज्ञानुसार
सिंहासन पर बैठ कर धर्मराज करने लगे।